प्रार्थना

हे नारायण! हमें शक्ति दो, ताकि हम सत्य को जन-जन तक पहुँचा सकें। अनेक बाधाएँ आ रहीं हैं, तुम्हारा साथ न हो तो हम कैसे आगे बढ़ें? हमारा यह कार्य दैवी भावना से प्रेरित है, और हमें दैव की सहायता चाहिए। आगे तुम्हारी इच्छा। हम तो तुम्हारे उपकरण मात्र हैं।

विषय वस्तु

अध्याय-१ क्या व्यर्थ ही बहा था, एक लाख अस्सी हज़ार हिंदुओं का लहू, बाबर से श्री राम के मंदिर को बचाने की चेष्टा में? २

अध्याय-२ प्रमाणों का परीक्षण करने देश के कोने-कोने से ४० पुरातत्वज्ञ आए, परीक्षण करने के पश्चात सभी एकमत हुए कि वहाँ मंदिर था ... ९

अध्याय-३ पचास वर्षों तक हमारे न्यायालय क्या करते रहे? क्या उन्होने उपलब्ध प्रमाणों को देखा? यदि वे अपना दायित्व नहीं निभाते तो उन्हें कौन सजा दे? १३

अध्याय-४ ग्यारहवीं शताब्दी का श्री विष्णु-हरि का शिलालेख जो स्पष्ट रूप से हमें बताता है कि यह मंदिर था श्री राम का १७

अध्याय-५ तीन हज़ार घंटे सोचने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय किया कि वे निर्णय नहीं करेंगे! जनता ने उन्हें जो दायित्व दिया उसका निर्वाह कौन करेगा? १९

अध्याय-७ इस सारे समस्या की जड़ जहाँ है वहीं हमें इसका हल खोजना होगा २९

अध्याय-८ कहाँ गई उन धर्मनिरपेक्षता के ठेकेदारों की आवाज़ जब सऊदियों ने मस्जिद मदरसा तोड़ा, जब पाकिस्तान सरकार ने मस्जिद तोड़ा, जब चीन की सरकार ने मस्जिद तोड़ा, जब इज़रायल सरकार ने मस्जिद तोड़ा, जब बर्मा के बौद्धों ने ढेरों मस्जिद मदरसे तोड़े ३६

हाँ, आज मैंने शस्त्र उठाया है ४२

लेखक की पुस्तकें ५०

संदर्भ ५१

युद्ध के परिणाम का निर्णय सेनाएँ नहीं करतीं। दुर्योधन के पास विशाल नारायणी सेना थी। युद्ध को दिशा देते हैं, महारथी व उनकी सोच। जब भीष्म सेनापति थे तो युद्ध की दिशा और ही थी। अभिमन्यु वध न हो पाता। जब द्रोण सेनापति थे तो युद्ध की दिशा और ही थी। अभिमन्यु वध हो ही गया! भीष्म स्वतंत्र थे, यदि बाँधा था उन्हें किसी ने तो उनके अपने वचन ने। द्रोण स्वतंत्र न थे, उन्हें बाँधा था उनके पेट ने। इसलिए जानिए कि आर्थिक स्वतंत्रता बड़े महत्व की चीज़ है। महाभारत का युद्ध होने वाला था, कृष्ण जानते थे। उन्होंने अर्जुन को भेजा, तप करने, बोले देवताओं को प्रसन्न करो, उनके दिव्यास्त्र माँगो। आज के अर्जुन को तप करना होगा। आज के देवताओं की खोज व पहचान करनी होगी, आज के दिव्यास्त्रों की माँग करनी होगी। इसके लिए आज के दिव्यास्त्रों की पहचान भी ज़रूरी है। जिसके पास पुत्र (अश्वत्थामा) के दूध के पैसे न हों, वह आज का द्रोण तो बन सकता है पर अर्जुन नहीं।

अध्याय-१ क्या व्यर्थ ही बहा था, एक लाख अस्सी हज़ार हिंदुओं का लहू, बाबर से श्री राम के मंदिर को बचाने की चेष्टा में?

अपने अतीत को अनदेखा न करें
क्योंकि अतीत के गर्भ से ही वर्तमान जन्म लेता है
और यही वर्तमान हमारे भविष्य को दिशा देता है

१८वीं शताब्दी में, एक ब्रिटिश भ्रमणकारी जिसने सूरत से लेकर दिल्ली तक भ्रमण किया, लिखते हैं - सूरत से दिल्ली तक उन्हें एक भी हिंदू मंदिर नहीं दिखाई दिया (संदर्भ - एम वी कामथ, पृ ४) एक हज़ार किलोमीटर और एक भी मंदिर नहीं। क्या हुआ उन मंदिरों का? क्यों हुआ ऐसा? क्योंकि क़ुरान यही हिदायत देता है हर मुसलमान को कि वह मंदिर तोड़े - कुरआन सूरह २ आयत १९३ एवं सूरह ८ आयत ३९ का भावार्थ - तब तक जारी रखो लड़ाई उनसे जब तक मूर्तिपूजा का नामों निशा न मिट जाए और इस्लाम सर्वत्र न फैल जाए। Make war on them until idolatry is no more and Allah's religion reigns supreme Qur'an 2:193 and 8:39 (उद्धृत - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १६५)। कुरआन सूरह ६० आयत ४ का भावार्थ - दुश्मनी और घृणा का बोलबाला रहेगा हमारे और उनके बीच तब तक, जब तक वे सभी केवल अल्लाह में ही विश्वास न करने लगें अर्थात तब तक, जब तक उन्हें जबरन मुसलमान न बना दिया जाए। Enmity and hate shall reign between us until ye believe in Allah alone Qur'an 60:4 (उद्धृत - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १६५)। और, क्योंकि पैग़ंबर मुहम्मद ने स्वयं मंदिर तोड़े और जो उन्होने किया वह सुन्ना बन गया जिसका अनुसरण करना हर मुसलमान के लिए एक कानून बन गया। सुन्ना का अर्थ है मुसलमानों का कानून जो कि मुहम्मद की कथनी और करनी के आधार पर बना है और जिसे अधिकार पूर्ण माना जाता है (क़ुरान के साथ) और विशेषकर सुन्नी मुसलमानों द्वारा अनुकरण किया जाता है। संदर्भ - ऑक्स्फ़ोर्ड डिक्श्नरी ऑफ़ इंग्लिश, पृ १८६१ जब तक पैग़ंबर मुहम्मद घटनास्थल पर नहीं उभरे, तब तक अरब राष्ट्र था ऐसा जहाँ अनेक संस्कृतियाँ पल रहीं थी साथ-साथ - मूर्तिपूजक मंदिर, ईसाई गिरजाघर, यहूदी प्रार्थना भवन, पारसी अग्नि मंदिर।

जब वह मरे तब तक सारे गैर मुसलमान या तो (बलपूर्वक) मुसलमान बना दिए गए थे, या फिर अरब देश से बाहर निकाल दिए गए थे, या मार डाले गए थे और उनके पूजा के स्थल बरबाद कर दिए गए थे या फिर वे मस्जिद में बदल दिए गए थे। वस्तुतः सबसे निर्णायक घटना थी पैग़ंबर का प्रवेश काबा में, जो था अरब मूल निवासियों के धर्म का प्रमुख मंदिर, जहाँ उन्होने एवं उनके भतीजे अली ने अपने ही हाथों से ३६० मूर्तियों को तोड़ा। इस्लाम का अपना बयान ही हमें बताता है कि उनके आदर्श व्यक्ति पैग़ंबर मुहम्मद ने अपवित्र किया काबा को और उसे मस्जिद में बदल दिया - इस प्रकार एक उदाहरण प्रस्तुत किया जिसका उत्साह से अनुकरण किया महमूद गज़नवी, औरंगज़ेब व तालिबान ने। वास्तव में (पैग़ंबर) मुहम्मद का आचरण उस मापदंड को परिभाषित करता है जिसके आधार पर यह निर्णय किया जाता है कि कौन एक अच्छा मुसलमान है। अर्थात अच्छा मुसलमान वही है जो मुहम्मद का पूरी तरह अनुसरण करता है। संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ ६०-६१

इस प्रकार जान बूझकर हिंदू मंदिरों को ध्वंस एवं अपवित्र करने का इतिहास हिंदुओं ने बहुत पहले ही भुला दिया है। उनकी मानसिक पीड़ा का कारण रहा है श्री राम मंदिर, जिसे ध्वंस एवं अपवित्र किया गया। क्या उन्हें दोष दिया जा सकता है - जैसा कि हैमिल्टन ने लिपिबद्ध किया - बाबरी मस्जिद बना था गारे के साथ हिंदू मृतकों के रक्त और चर्बी से। संदर्भ - एम वी कामथ, पृ ४ श्री राम जन्मभूमि मंदिर के बारे में गिरीश मुंशी लिखते हैं - दो फ़क़ीरों के उकसाने पर बाबर ने अपने सेनापति को आक्रमण करने के लिए कहा। सेनापति का विरोध किया हंसबर के राजा विजय सिंह ने, मकरियाह के राजा संग्राम सिंह ने और भिटी के राजा मोहबत सिंह ने। ब्रिटिश इतिहासज्ञ कन्निंघम लिखते हैं - हिंदुओं ने एक जुट होकर सामना किया अपने श्री राम जन्मभूमि मंदिर के लिए। १ लाख ८० हज़ार हिंदू मारे गए। मुसलमान मृतकों की संख्या उपलब्ध नहीं। अंत में मीर बाक़ी ने मंदिर को अपने तोप से उड़ा दिया। संदर्भ - एम वी कामथ, पृ ४

आज हिंदू अपने आप से पूछें एवं अपने मुसलमान साथियों से पूछें कि क्या १ लाख ८० हज़ार हिंदुओं का रक्त व्यर्थ ही बहा था? क्या यह बात समझ में नहीं आती है कि बाबर ने वहाँ मस्जिद बनाने के लिए मस्जिद नहीं बनाया था? यदि उसे केवल मस्जिद ही बनाना होता तो हिंदुस्तान भर में जगह की कमी

नहीं थी। उसके लिए हिंदुओं के मंदिर को - और वह भी श्री राम के मंदिर को - तोड़ने की आवश्यकता नहीं थी। उसने तोड़ा इसलिए कि उसे हिंदुओं को नीचा दिखाना था। हिंदुओं को आज वहाँ मंदिर न बनाने देना उसी भावना को जिलाए रखना होगा। जैसा कि बाबर ने स्वयं लिखा था अपनी ही आत्मकथा में - इस्लाम की ख़ातिर, मैं भटका जंगलों में, तैयार लड़ने हिंदुओं से, वादा किया अपने आप से कि मरूँगा एक शहीद की मौत, खुदा का शुक्र है कि घाज़ी मैं बन गया (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १६८, उद्धृत - बाबरनामा का अनुवाद मिसेस ए एस बेवेरिज के द्वारा) हिंदुओं को मारते हुए मरना इस्लाम में बड़े फ़क्र की बात हुआ करती है और वह शहीद कहलाता है। हिंदुओं को जो स्वयं अपने हाथों से मारता है वह इस्लाम में घाज़ी का दर्ज़ा पाता है और पैगंबर मुहम्मद का दावा है कि वह सीधा स्वर्ग को जाता है। आप अपने मन को बहलाते हैं, समाचार पत्रों में यह पढ़ कर कि कश्मीर में हिंदुओं का कत्ल आतंकवादियों ने किया। उन्होनें हिंदुओं का खुले आम कत्ल आतंक फैलाने के लिए नहीं किया। उन्होनें कत्ल इसलिए किया कि इस्लाम उन्हें कहता है कि मूर्तिपूजकों का कत्ल करो, तुम्हें जन्नत मिलेगा। ताकि आपकी नज़र इस सच्चाई पर आकर न टिके, कि इन सब के पीछे इस्लाम, एवं केवल इस्लाम है, इसलिए उन्होनें इस नए नाम का ईजाद किया - आतंकवादी। याद रखें, हमेशा केवल सही नाम का प्रयोग करें, ताकि आपके सामने सही छवि रहे, अन्यथा आपकी नज़र गुमराह हो जाएगी, और आपकी सोच भी। यदि मुसलमान हिंदुओं को अपना भाई समझते हैं तो क्या उनका कर्तव्य नहीं बनता कि वे वापस कर दें श्री राम के जन्म की वह भूमि - और क्या माँगा है, हिंदुओं ने उनसे? वे हिंदू भाई जो मुसलमानों के बड़े हमदर्द बनते हैं, क्या उनकी इतनी बड़ी खोपड़ी में इतनी छोटी सी बात नहीं समाती? या वे अपने आप को बहुत बड़े दिल वाला सिद्ध करना चाहते हैं, कि चलो छोड़ दिया हमने राम के जन्म की जगह भी, क्योंकि हमें उचित-अनुचित से कोई मतलब नहीं, हम तो हैं इन छोटी बातों से बहुत ऊपर! कोई मुसलमानों से यह नहीं कहता कि वे ऋण अदा करें, उन १,८०,००० हिंदुओं के रक्त का जो बहा था, श्री राम के जन्मस्थान की रक्षा के लिए। हिंदू तो केवल इतना कहते हैं कि, दे दो आज हमें सिर्फ़ श्री राम के जन्म की वह भूमि का टुकड़ा, जो हमें १,८०,००० हिंदुओं के जान से भी ज़्यादा प्यारी है।

पाँडवों ने भी तो दुर्योधन से यही माँगा था, कि दे दो हमें केवल पाँच गाँव

हम पाँचों के लिए, हम नहीं चाहते रक्तपात! पर उस दुर्बुद्धि दुर्योधन और उसके सलाहकार मामा शकुनि को वह भी गवारा न था। बिना युद्ध के, सुई की नोक के बराबर ज़मीन देने को भी तैयार न हुए वह। आज मुसलमानों की सोच भी तो यही है! दुर्योधन दंभी बन गया था इतना, कि पाँडवों की विनम्रता को उसने पाँडवों की निर्बलता समझ ली। यही तो स्थिति है आज, हिंदुओं के विनम्रता की। पर एक बड़ा अंतर है यहाँ - पाँडव एकजुट थे और हिंदू बँटे हुए हैं। इसलिए मुसलमानों ने हिंदुओं की विनम्रता को उनकी कमज़ोरी जान लिया है। दुर्योधन ने इसे पाँडवों की कमज़ोरी मानी थी, पर मुसलमानों ने इसे हिंदुओं की कमज़ोरी जानी है। यह जान लो हिंदुओं, कि जब तक तुम मूर्खों की भाँति बिखरे रहोगे, तब तक तुम्हें निर्बल मान कोई तुम्हारी इज़्ज़त न करेगा। यदि ऐसे ही जीना चाहते हो, कायरों की भाँति, और इस भ्रांति में जीना चाहते हो कि हमें शांति चाहिए, तो यही मुबारक हो तुम्हें! पर इतना जान लो कि सच्ची शांति तो हासिल होती है केवल उसे जो शक्तिशाली होता है, निर्बल तो केवल भ्रम में जीता है!

तुम लोगों ने भगवद्गीता को समझा ही नहीं, केवल स्वाँग करते हो समझने का। अरे जरा सोच कर देखो कि क्या आवश्यकता थी भगवान श्री कृष्ण को, कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में दुबके हुए अर्जुन को ललकारने की? हे पृथा के पुत्र अर्जुन, तुझे नामर्द नहीं बनना है। ऐसा तेरे लिए कतई योग्य नहीं है। हे परंतप, हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता का त्याग करके अब तू युद्ध के लिए तैयार हो जा। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३ अरे, श्री राम का मन्दिर तो निमित्त मात्र है! प्रश्न यह है कि तुममें धर्म की रक्षा हेतु उठ खड़े होने की मानसिक इच्छा एवं शारीरिक योग्यता है, कि नहीं! वह निर्बल जो सत्य-असत्य में अंतर नहीं कर पाता, वह दुबका हुआ जिसे उचित-अनुचित में फ़र्क़ नहीं जान पड़ता, वह भटका हुआ जिसे न्याय-अन्याय की परवाह नहीं, वह क्या करेगा अपनी रक्षा, अपने धर्म की रक्षा, अपने कुल की रक्षा, अपने समाज की रक्षा, अपने राष्ट्र की रक्षा, इस मानव समुदाय की रक्षा?

वह मूर्ख सोचता है कि वह भगवान की साधना में लीन है, उसे तो भक्ति चाहिए, उसे तो भगवान चाहिए, पर उसे क्या मालूम कि भगवान तो उसे तब तक हासिल न होंगे जब तक उसने अपनी सांसारिक ज़िम्मेदारियों को पूरा न कर, उनसे ऊपर न उठा हो, और उसने यह न जाना हो कि सांसारिक ज़िम्मेदारियाँ केवल सीमित व्यक्तिगत परिवार के इर्द-गिर्द ही नहीं घूमा करती।

जब दुर्योधन ने पाँडवों की उस जायज़ माँग को भी ठुकरा दिया, तब वही भगवान श्री कृष्ण बोले, पाँडवों अब समय आ गया शस्त्र धारण करने का। वह दिन दूर नहीं जब यही स्थिति हमारे सामने आ खड़ी होगी और आपको निर्णय लेना होगा। तब क्या आप (शांति प्रिय या कायर?) चूहे की भाँति दुबक कर अपने बिल में जा घुसना चाहेंगे?

यह न भूलें कि यदि महाभारत न होता, तो भगवद्गीता न होती। इस भ्रम में न रहिए कि भगवद्गीता अस्तित्व में आई, लोगों को उस त्याग का एहसास कराने जो उन्हें इस जीवन रूपी युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े होने की प्रेरणा देता है। श्री नारायण ने आपको, आपका कर्म त्यागने को नहीं कहा था। उन्होनें तो आपको, आपके कर्म का फल त्यागने को कहा था। पर आप तो बड़े विज्ञ की भाँति, कर्म को ही त्यागने हेतु उद्यत हो गए! यदि आपको संसार त्याग कर, अपने धर्मगुरु के आश्रम में जाकर, जीवन बिताना है तो अवश्य बिताएँ। अपने धर्मगुरु से यह भी कहें कि आपको खिलाएँ, आपके परिवार को खिलाएँ। यदि वे कहते हैं कि, हमने तो संसार छोड़ दिया, तुम संसार में हो, इसलिए तुम हमें खिलाओ, तो यह स्पष्ट रूप से समझें कि आप अभी संसार में हैं, और आपके इर्द-गिर्द संसार में जो कुछ भी हो रहा है, उससे आप भाग नहीं सकते। आपको संसार में रहकर संसार से जूझना होगा, संसार के ही नियमों के अनुसार।

अँग्रेज़ प्रशासक एच ई नेविल ने गेज़ेट में लिपिबद्ध किया - १५२८ ईस्वी में बाबर अयोध्या में आया और एक सप्ताह ठहरा। उसने ध्वंस कर दिया उस प्राचीन मंदिर को (जो राम के जन्मस्थान की पहचान कराता था) और उसके स्थान पर बनाया एक मस्जिद...वहाँ दो शिलालेख हैं, एक बाहर और एक प्रवचन मंच पर, दोनों पर तारीख़ें खुदी हैं ९३५ ऋ संदर्भ एम वी कामथ, पृ ४ गिरीश मुंशी के एक अप्रकाशित शोध के अनुसार स्वयं मुसलमान विद्वानों के लेखों में अनेक प्रमाण मिलते हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि श्री राम का मंदिर ध्वंस किया गया था। उनके नाम हैं - मिर्ज़ा जान, मोहम्मद असघर, मिर्ज़ा रज़ाब अली बेग सुरूर, शेख मोहम्मद अज़मत अली काकोर्वी नामी, हाजी मोहम्मद हुसैन, मौलवी अब्दुल करीम, अल्लामा मोहम्मद नज़मु घानी और मुंशी मौलवी हशमी। इसके अलावा कई यूरोपियन (इतिहासकारों) के नाम भी हैं (जो इस बात की पुष्टि करते हैं) - विलियम फिंच, ज़ोजेफ टाइफ़ेन्थालेर, मॉन्टगोमरी मार्टिन, एड्वर्ड थॉर्नटन और हांस बैकेर। संदर्भ - एम वी कामथ,

पृ ४

१९वीं शताब्दी के मिर्ज़ा जान अपनी ऐतिहासिक पुस्तक हदिकाह-ए-शुहादा में लिखते हैं - जहाँ भी उन्हें हिंदुओं के भव्य मंदिर मिले...वहीं मुस्लिम सुलतानों ने मस्जिद व सराय बनाए, इस्लाम को बहुत ही उत्साह के साथ फैलाया और काफ़िरों (मूर्तिपूजक हिंदुओं) का दमन किया। इस प्रकार से उन्होनें फ़ैज़ाबाद एवं अवध (अयोध्या) को भी इस नारकीय गंदगी से साफ़ कर दिया क्योंकि यह उनकी पूजा का एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान हुआ करता था एवं राम के पिता की राजधानी। वहाँ जहाँ एक बहुत भव्य मंदिर (राम जन्म स्थान का) हुआ करता था, वहीं उन्होने एक बड़ा मस्जिद बनवाया...क्या आलीशान मस्जिद बनवाया सुलतान बाबर ने! संदर्भ - डॉ एन एस राजाराम, पृ ९६, उद्धृत - मिर्ज़ा जान

औरंगज़ेब की पौत्री १७०७ ईस्वी में सहिफ़ा-ए-चिहल नासाएह बहादुरशाही में लिखती हैं - इस्लाम की फ़तह को नज़र में रखते हुए सभी कट्टर मुस्लिम सुलतानों को चाहिए कि वे इन मूर्तिपूजकों को अपनी अधीनता में रखें, जिज़िआ (हिंदुओं पर लगाया गया धार्मिक कर) वसूल करने में जरा भी ढील न दें, हिंदू राजाओं को जरा भी छूट न दें ताकि वे खड़े रहें अपने पैरों पर मस्जिद के बाहर तब तक जब तक ईद की नमाज़ न ख़त्म हो...शुक्रवार व सामूहिक नमाज़ों के लिए लगातार प्रयोग में लाते रहें उन मस्जिदों को जिन्हें इन मूर्तिपूजक हिंदुओं के मथुरा, बनारस व अवध के मंदिरों को तोड़ कर बनाया गया है। संदर्भ - डॉ एन एस राजाराम, पृ ९६-९७, उद्धृत - मिर्ज़ा जान

इन बातों से क्या यह स्पष्ट नहीं होता कि श्री राम का मंदिर था वहाँ? सौ वर्षों से अधिक समय बीत चुका है, हिंदू शांति प्रिय ढंग से माँग करते रहे हैं उस जमीन की, ताकि वहाँ श्री राम का एक भव्य मंदिर बना सकें।

१८८५ में महंत रघुबंस दास ने फ़ैज़ाबाद न्यायालय में एक मुकदमा दायर किया कि वह स्थान जो हमारे पूज्य श्री राम के जन्म का स्थान था, उस पर बलपूर्वक और अन्याय से यवन आतातायियों ने कब्जा जमा लिया था, अतः अब यह न्याय की माँग होगी कि वह स्थान हिंदुओं को दे दिया जाय। संदर्भ - एम वी कामथ, पृ ४

सोच कर देखिए कल यदि एक लुटेरे ने ज़बरदस्ती आपकी संपत्ति छीन ली तो क्या आज आप न्यायालय में जाकर न्याय नहीं माँग सकते, कि आप को

आपकी संपत्ति वापस कर दी जाए? यही तो किया था हिंदुओं ने। और किस लिए होते हैं न्यायालय? किस लिए होती है सरकार? ताकि न्याय करे - ऐसा ही न? प्रजा राजा के पास न जाएगी, तो कहाँ जाएगी?

फ़ैज़ाबाद के जिला-जज ने १६ मार्च १८८६ को अपना निर्णय सुनाते हुए कहा - कल मैं स्वयं दोनों पक्षों के लोगों के साथ उस स्थल पर गया...यह बड़े दुर्भाग्य की बात है यह मस्जिद ऐसी जगह पर बनाई गई जो हिंदुओं के लिए इतना पवित्र स्थान रहा है। संदर्भ - एम वी कामथ, पृ ४ एवं डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १६१

यहाँ ध्यान दें कि अँग्रेज़ न्यायाधीशों ने भी इस बात से इन्कार नहीं किया कि वहाँ श्री राम का मंदिर हुआ करता था। पर जैसा कि आप आगे चलकर इस पुस्तक में देखेंगे, आज हमारे ही लोग किसी लोभ वश इस ऐतिहासिक तथ्य को झुठलाने में लगे हैं और उसके पीछे कितना बड़ा षड़यंत्र काम कर रहा है यह भी आप देखेंगे। उसके पश्चात संभवतः आप अपने आप से यह पूछना चाहेंगे कि ऐसी परिस्थिति में आपका क्या कर्तव्य है? तटस्थ रहना, जानते बूझते अन्याय को अनदेखा करना या अन्याय का विरोध करना?

धृतराष्ट्र एवं युधिष्ठिर लगातार दुर्योधन के अन्याय पूर्ण कार्यों को अनदेखा करते रहे और इस प्रकार से, परोक्ष रूप से अन्याय को प्रश्रय देते रहे। क्या आप वही नहीं कर रहे हैं? अंत में इसका परिणाम हुआ महाभारत का युद्ध, जिसे टाला जा सकता था यदि अन्याय का तिरस्कार एवं न्याय की प्रतिष्ठा समय रहते की जाती। आप क्या करना चाहेंगे?

ठग रहा है वह अपने आप को,
जो अनदेखा करे इतिहास को।
इतिहास वो दर्पण है
जिसमें चाहे तो देख सकते हैं हम,
अपने आने वाले कल की छवि।
न भूलें कि इतिहास अपने आप को
सदियों से दोहराता रहा है।

अध्याय-२ प्रमाणों का परीक्षण करने देश के कोने-कोने से ४० पुरातत्वज्ञ आए, परीक्षण करने के पश्चात सभी एकमत हुए कि वहाँ मंदिर था

डॉ एस पी गुप्ता इलाहाबाद संग्रहालय के संचालक रहे हैं। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर डॉ गुप्ता की टीकाओं से हमें बहुत कुछ जानने को मिलता है। उन टीकाओं का संक्षिप्त विवरण हम आपके लिए प्रस्तुत करते हैं, इस अध्याय में, हमारे अपने शब्दों में। संदर्भ - डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ ११२-१२२

प्रॉफ़ेसर बी बी लाल जो भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के मुख्य निर्देशक रहें हैं, उन्होने १९७५ से १९८० के बीच, अयोध्या में बहुत खुदाई की - उस स्थान पर भी जहाँ जन्मस्थान-मस्जिद हुआ करता था। प्रॉफ़ेसर लाल ने वहाँ १४ खाइयाँ खोदीं, यह जानने के लिए कि वह जगह कितनी पुरानी थी। उन खुदाईयों से यह पता चला कि वह नगर कम से कम ३,००० वर्ष पुराना रहा होगा, संभवतः उससे अधिक। वहाँ उन खाइयों में बड़े-बड़े समानांतर चौकोर स्तंभों वाले, ईंट और पत्थरों का बना हुआ एक बहुत बड़ा ढाँचा पाया गया। दरवाज़ों पर हिंदू मूर्तियाँ काढ़ी हुई पाई गईं। यक्ष, यक्षी, कीर्ति मुख, पूर्ण घट्ट, कमल के फूल इत्यादि सजावट की वस्तुएँ पाई गई। प्रॉफ़ेसर बी बी लाल की खुदाईयों से यह भी पता चला कि स्तंभों पर बना हुआ वह ढाँचा बार-बार मरम्मत किया गया, कम से कम तीन बार। प्रॉफ़ेसर बी बी लाल की खुदाईयों ने यह भी दिखाया कि वहाँ एक बहुत बड़ी दीवार क़िलेबंदी के लिए थी, जो बनाया गया था पकाए हुए ईंटों से और जिसकी उम्र रही होगी ३ शताब्दियाँ ईसा के पहले। यहाँ ध्यान दीजिए, बाबरी मस्जिद बना था १६वी शताब्दी में, अर्थात यह दीवार उससे १६०० अ ३०० उ १९०० वर्ष पहले बनी थी। अन्य शब्दों में कहा जाय तो वहाँ बाबर के पहले भी बहुत कुछ था, जिसे आज झुठलाने में जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय एवं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के इतिहासज्ञ जी तोड़ कर लगे हैं। यह एक जानी और मानी हुई बात है कि पुरातात्विक खुदाई में भाग्य का साथ भी आवश्यक होता है। कहा जाता है कि केवल कई इंचों के लिए कोई छुपा ख़ज़ाना तक खो देता है। अर्थात, यदि कई इंच और खुदाई की होती तो संभवतः ख़ज़ाना हाथ लग जाता। दक्षिण की तरफ़ प्रॉफ़ेसर बी बी लाल ने जो खाइयाँ खोदी थीं, उससे केवल १०-१२ फीट की दूरी पर एक बहुत बड़ी खुदाई छूट गई जिसमें ४० से ज्यादह प्रतिमाएँ बाद

में पाई गई। पर प्रॉफ़ेसर लाल को मिला था, १६वीं शताब्दी से पहले के तोड़े हुए मंदिर के स्तंभ, जो अन्य पुरातत्वज्ञों को नहीं मिल पाये थे।

ये ४० से अधिक प्रतिमाएँ तब पाई गईं जब उत्तर प्रदेश सरकार के अधिकारी पूर्व एवं दक्षिण के खाइयों के बग़ल की ज़मीन को समतल कर रहे थे। बड़ी चर्चा रही इनकी समाचार पत्रों में १८ जून १९९२ से। यहाँ ध्यान दीजिए तारीख़ पर। जून १९९२। बाबरी ढाँचा अभी गिरा नहीं था। हमारे न्यायालय इन प्रमाणों की उपलब्धि से अनभिज्ञ नहीं थे। २ जुलाई १९९२ को एक और पुरातत्वज्ञों का दल उस स्थान पर पहुँचा। इस दल में थे डॉ वाई डी शर्मा, जो सर्वेक्षण के उप मुख्य निर्देशक रहे थे, डॉ एस पी गुप्ता, जो इलाहाबाद संग्रहालय के संचालक रहे थे, और बहुत सारे वरिष्ठ पुरातत्वज्ञ भी वहाँ पहुँचे। उन्होने हिंदू मंदिरों की उन ४० से अधिक कलाकृतियों व पुरातात्विक अवशेषों का परीक्षण किया। उन्होने पाया कि ये वस्तुएँ १०वीं से १२वीं शताब्दी के बीच की थीं। इन वस्तुओं में थीं कई आमलका जो उन दिनों की समस्त उत्तर भारतीय मंदिरों में (कोनार्क और खजुराहो) आज भी देखने को मिलती हैं। एक और वैसा ही आमलका पाया गया एक बार फिर (१ जनवरी १९९३ को) एक खाई में, जब उत्तर प्रदेश के सरकारी अधिकारी, फ़ैज़ाबाद के एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की मौजूदगी में, मंदिर के चारों तरफ़ एक नया घेरा बना रहे थे। और भी मूर्तियाँ पाई गईं जो थीं चक्र-पुरुष, परशुराम, मैत्री देवी, शिव व पार्वती की, जो १०वीं से १२वीं शताब्दी के बीच की थीं। ये मूर्तियाँ उस धरती के नीचे नहीं मिल सकती थीं यदि वहाँ मस्जिद के पहले मंदिर न रहा होता।

बाद के दिनों में, पूर्व के हिस्से में, पुरातत्वज्ञों की एक और टोली ने खुदाइयाँ की और उन्होने १० फीट से अधिक ज़मीन खोदी, पूर्व व दक्षिण की तरफ़, जहाँ सरकारी अधिकारियों ने कुछ हिस्से को काटा था। इस दौरान पाया गया एक बहुत गहरा गड्ढा और अवशेष, कम से कम ३ ठूँसे हुए फ़र्शों की, जो थीं १०वीं से १६वीं शताब्दी के बीच की, और एक फ़र्श जो थी १ली से ३री शताब्दी के बीच की। दो दीवारें पाई गईं जो १ली से ३री शताब्दी के बीच की बनी थीं। प्रॉफ़ेसर बी आर ग्रोवर ने एक बहुत बड़ी और फैली हुई पके ईंटों की फ़र्श भी पाई।

इन सभी खुदाईयों से एक और बात स्पष्ट हुई। वह यह कि जन्मभूमि

स्थान पर हिंदू मंदिर बनाए गए थे कई बार, केवल पिछले ४५० वर्षों को छोड़ कर, जब मुस्लिमों ने मंदिर तोड़ कर उस जगह बनाई एक मस्जिद, जिसे मुसलमानों ने नाम दिया 'जन्मस्थान-मस्जिद' का अपने ही लिखित प्रमाणों में। आप अपने आप से पूछिए - जन्मस्थान किसका? यदि बाबर का नहीं, आपका और हमारा नहीं, उन कॉम्युनिस्ट इतिहासज्ञों का नहीं जो बार-बार समाचार पत्रों में यह कहते नहीं थकते कि राम का नहीं - तो किसका जन्मस्थान? पैग़ंबर मुहम्मद का या फिर कार्ल मार्क्स का? इन सभी खुदाईयों से एक और बात स्पष्ट हुई। वह यह कि अंतिम बार, जो आलीशान मंदिर पत्थरों से वहाँ बना होगा, वह रहा होगा ११वीं-१२वीं शताब्दी का। इसके सिवा कुछ अन्य मूर्तियों के आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उसी स्थान पर ९वीं-१०वीं शताब्दी का प्रतिहार शैली का एक मंदिर रहा होगा, जबकि गढ़वालों के समय वहाँ एक नए एवं भव्य मंदिर के बनाने की चेष्टा की गई होगी जिसे, वस्तुतः, एक प्रकार से जीर्णोद्धार कहा जा सकता है। देश के वरिष्ठ पुरातत्वज्ञों की राय जानने के लिए इन सभी विषयों पर, और उन्हें एक अवसर देने के लिए कि वे स्वयं इन प्रमाणों को देखें और इनको अपने हाथ में लेकर जाँचें और अपनी राय दें - अयोध्या के तुलसी स्मारक भवन में देश के कोने-कोने से ४० पुरातत्वज्ञ सम्मिलित हुए १० से १३ ऑक्टोबर (अक्तूबर) १९९२ के बीच। उनमें सम्मिलित थे मद्रास से प्रॉफ़ेसर के वी रमन, धारवाड़ से प्रॉफ़ेसर ए सुन्दरा, बैंगलोर से डॉ एस आर राव, अहमदाबाद से प्रॉफ़ेसर आर एन मेहता, जयपुर से श्री आर सी अग्रवाल, सागर से डॉ एस के पाण्डे, नागपुर से प्रॉफ़ेसर अजय मित्र शास्त्री, बनारस से डॉ टी पी वर्मा, फ़ैज़ाबाद से प्रॉफ़ेसर के पी नौटियाल, पटना से प्रॉफ़ेसर बी पी सिन्हा, भोपाल से डॉ सुधा मलैइया, दिल्ली से प्रॉफ़ेसर के एस लाल एवं दवेन्द्र स्वरूप, इलाहाबाद से प्रॉफ़ेसर वी डी मिश्रा, रीवा से प्रॉफ़ेसर आर के वर्मा, एवं अन्य अनेक जिनमें सम्मिलित थे वाई डी शर्मा, के एम श्रीवास्तव और एस पी गुप्ता जिन्होने अयोध्या में खुदाई एवं परीक्षण का कार्य किया था। परीक्षण के बाद वे सभी एकमत हुए कि वहाँ जन्मस्थान पर निश्चयतः मंदिर था।

बाबरी ढाँचा अभी गिरा नहीं था, उसके गिरने की आवश्यकता भी तो नहीं थी। न्यायालय की सुनवाई समाप्त हो चुकी थी, बाबरी ढाँचे के गिरने के १ महीने पहले। अब आप अपने आप से एक प्रश्न पूछिए - न्यायालयों के पास

सारे देश के कोने-कोने से आए ४० पुरातत्वज्ञों के राय उपलब्ध थे। उनकी सारी सुनवाई भी ४ नवंबर १९९२ को समाप्त हो चुकी थी। फिर उन्होने न्याय क्यों नहीं दिया?

अन्याय की सीमा को पार करने के बाद,
उसे सहते रहना कायरता ही कहलाएगी।
हम उसे सहिष्णुता कहने की भूल तो नहीं कर सकते।

अध्याय-३ पचास वर्षों तक हमारे न्यायालय क्या करते रहे? क्या उन्होने उपलब्ध प्रमाणों को देखा? यदि वे अपना दायित्व नहीं निभाते तो उन्हें कौन सजा दे?

डॉ कोएनराड एल्स्ट हमें यह भी बताते हैं कि आज दुनिया भर में, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैड, अमरिका में, वहाँ की सरकारें और वहाँ के न्यायाधीश, वहाँ के आदि-निवासियों के अपने धार्मिक स्थानों पर उनके पूजा करने का अधिकार स्वीकार कर रहे हैं (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १८८)।

तो फिर हमारी सरकार और हमारे न्यायाधीश इससे कतराते क्यों हैं? क्या उन्हें सच्चाई मालूम नहीं थी? या वे जान बूझकर सच्चाई से मुख मोड़े रहना चाहते थे? जनता अपने कर से सरकार का ख़ज़ाना भरती है, और उस ख़ज़ाने से इन न्यायाधीशों को वेतन मिलता है! आइए देखें कि हमारी अँग्रेज़ी ईसाई शिक्षा पद्धति की देन ये न्यायाधीश इस नमक का हक़ कैसे अदा करते हैं?

फ़ैज़ाबाद के न्यायाधीश ने ३ मार्च १९५१ (ध्यान रहे, ४१ वर्ष के पश्चात १९९२ में बाबरी ढाँचा गिरा) को न्यायालय के लिखित प्रमाणों में लिपिबद्ध किया कि अयोध्या के मुस्लिम निवासियों ने शपथपत्र पर यह लिख कर न्यायालय को दिया कि कम से कम १९३६ से उस ढाँचे का मस्जिद के रूप में प्रयोग नहीं किया गया, न ही वहाँ कोई नमाज़ अदा की गई। न्यायाधीश ने यह भी लिपिबद्ध किया है कि ऐसा कुछ भी उनके सामने नहीं लाया गया जो उन शपथपत्रों को झूठा सिद्ध कर सके (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १६८-१६९)।

अँग्रेज़ों के समय से, १९३६ के बाद, उस जगह पर कभी नमाज़ न अदा की गई। जिस जगह पर ५७ वर्षों से नमाज़ न अदा की जाए वह जगह मस्जिद नहीं रहती, वह एक स्मारक बन कर रह जाता है। १९४९ में हिंदुओं ने उस ख़ाली ढाँचे को, जिसे आज हमारे समाचार पत्र और राजनीतिज्ञ बाबरी मस्जिद कहते नहीं थकते, हिंदू मंदिर के रूप में उपयोग में लाना आरम्भ किया।

वह ढाँचा जिसे हम बाबरी मस्जिद कहते हैं और जो पिछले ४४ वर्षों से एक मंदिर बना रहा, उसे मंदिर का आवरण देना स्वाभाविक ही होता। इसीलिए हिंदू चाहते थे कि इस मस्जिदनुमा ढाँचे को, जो अब ५७ वर्षों से मस्जिद न रहा, बल्कि ४४ वर्षों से अब एक मंदिर बन चुका था, उसे मंदिर का चेहरा दिया जाए। क्या दोष था इसमें (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १४८-१४९)?

बड़े समाचार पत्र जो जनमत तैयार करते हैं, क्या उनका यह कर्तव्य नहीं था कि वे इन तथ्यों को बार-बार जनता के सामने लाते कि अब वह मस्जिद न रहा था। इसके विपरीत, उन्होने जनता को बार-बार बाबरी मस्जिद का नाम लेकर यह एहसास दिलाया कि वह मस्जिद (इबादत की जगह अर्थात पूजा का स्थान) ही था। उसे बाबरी मस्जिद कहते-कहते हमारे समाचार पत्रों ने और हमारे राजनीतिज्ञों ने जो छवि सबके मन में आँकी है, वह है एक मस्जिद की, जिसे ढहा दिया हिंदुओं ने। पर सत्य यह है कि हिंदुओं ने एक मस्जिद (मुसलमानों के इबादत की जगह) नहीं, बल्कि पिछले ४४ वर्षों से हिंदू मंदिर के रूप में प्रयोग किए जाने वाले एक ढाँचे को गिराया था, जहाँ पिछले ५७ वर्षों से कभी नमाज़ नहीं पढ़ी गई थी। अतः उसे मस्जिद का नाम देने की भूल न करें, क्योंकि मस्जिद के नाम से जुड़ी होती है छवि, एक पूजा के स्थान की। सही नाम का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। इसकी उपेक्षा न करें क्योंकि यह हमारी सोच को सही, या ग़लत दिशा देती है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर डॉ अरुण शोउरी की टीकाओं से हमें बहुत कुछ जानने को मिलता है, जिसके ऐतिहासिक तथ्य हम आपके लिए यहाँ प्रस्तुत करते हैं हमारे अपने शब्दों में (संदर्भ - डॉ अरुण शोउरी, पृ रोमन ६-११)

हिंदुओं ने न्यायालय से भी अपील की। ४ वर्ष बीत गए। १९५५ में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने लिखा कि यह बड़े ही दुःख की बात है कि ४

वर्षों तक इस तरह की समस्या अनिर्णीत रही। अर्थात इलाहाबाद उच्च न्यायालय को इस बात का ज्ञान था कि यह समस्या अत्यंत महत्वपूर्ण है, और इसे इस प्रकार अनिर्णित रखना किसी भी प्रकार से उचित नहीं। १९५५ में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने जब वह बात कही थी तो केवल ४ वर्ष ही बीते थे। देखते-देखते और भी ४० वर्ष बीत गए। न्यायाधीश भूल गए कि उन्हें वेतन मिलता है जनता के दिए हुए कर से। जब जनता न्याय माँगती है उनसे, तो उन्हें इसमें कोई रुचि नहीं। आया जुलाई १९९२ और अब भी न्यायालय सुनवाई कर रही थी। शायद ऊँचा सुनते हैं इसलिए ४२ वर्ष बीत गए पर जनता की आवाज़ उनके कानों तक न पहुँची! जुलाई १९९२ में कर सेवा आरंभ हुई तो अचानक सर्वोच्च न्यायालय की नींद टूटी। उन्होने उत्तर प्रदेश सरकार से कहा कि यदि वे कर सेवा रुकवा सकें तो सर्वोच्च न्यायालय इस मुकदमे को खुद अपने हाथों में ले लेगी और इसे पूरी तरह से निपटा देगी। कर सेवा तो ख़ैर रुक गई पर सर्वोच्च न्यायालय भी अपनी ज़बान से मुक़र गई। उन्होने गेंद फिर इलाहाबाद उच्च न्यायालाय की ओर फेंक दी, बोले जल्दी निपटाओ इसे।

हिंदुओं ने सोचा कम-से-कम इस बार न्याय मिलेगा उन्हें। तय किया ६ दिसंबर १९९२ को होगी कर सेवा। संयोग से इस बार इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने काम किया और उनकी सुनवाई समाप्त हुई ४ नवंबर १९९२ को। उनके पास पूरा १ महीना बाकी था निर्णय लेने को। उत्तर प्रदेश सरकार और दूसरों ने बार-बार अपील की, कि न्यायालय सुना दे अपना निर्णय, जो भी हो मंज़ूर उसे। पर एक न्यायाधीश चला गया छुट्टी मनाने और निर्णय गया खड्डे में।

६ दिसंबर १९९२ को वह ढाँचा गिर गया। उस ढाँचे को गिरने की आवश्यकता न होती यदि न्यायाधीश को छुट्टी अधिक प्यारी न होती। आज न्यायाधीश बाबरी ढाँचे को गिराने वालों को सजा देना चाहते हैं। जिनकी अकर्मण्यता के कारण यह ढाँचा गिरा, उन्हें कौन सजा देगा? ये न्यायाधीश दूसरों के लिए न्याय करते हैं, जब ये स्वयं अन्याय करें तो कौन इन्हें कटघरे में खड़ा करे? जनता न भूलें कि उन्हें इसका अधिकार है क्योंकि वे अपने 'कर' से उन्हें वेतन देते हैं। यदि जनता के 'कर' से मिलने वाला वेतन उन्हें मिलना बंद हो जाए तो वे छुट्टी मनाना बंद और कार्य करना आरंभ कर देंगे।

डॉ कोएनराड एल्स्ट कहते हैं - इस बात को ध्यान में रखते हुए कि ४२

वर्षों के इस अंत हीन मुकदमेबाज़ी के उपरांत, जिस प्रकार से, मूर्खता भरे अहंकार के साथ, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने, पूर्व निर्धारित ६ दिसंबर की कर सेवा के, कुछ ही दिनों पहले, अपने निर्णय को एक बार फिर से ताक पर रख दिया - यह कतई उचित न होगा, कि हम अति-उत्साही राम भक्तों को, उनके न्याय की प्रक्रिया के प्रति निरादर, के लिए दोष दें - उस न्याय की प्रक्रिया के प्रति, जिसका यह दायित्व है, कि वह लोकतांत्रिक व्यवस्था की मर्यादा को, बनाए रखे। निश्चय ही, उन्होने निरादर प्रकट किया है, न्यायालयों का राजनीतिक खेलों के लिए, अनुचित प्रयोग के प्रति। और, उन्होने बिल्कुल सही बग़ावत की है, न्यायाधीशों के हिंदू समाज के प्रति, अवज्ञा के लिए - वह अवज्ञा, जो साफ़ झलकती है, उनके इस विवाद को सुलझाने की अनिच्छा से, वह भी ऐसा विवाद, जो राम जन्मभूमि जैसा महत्वपूर्ण हो (उद्धृत - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १२९)।

कौन असली दोषी?
कौन था ज़िम्मेदार
बाबरी ढाँचे के गिरने का?
वे राम भक्त?
या वे न्यायाधीश
जिन्होनें न्याय की मर्यादा न रखी?
उस सर्वोच्च न्यायालय ने,
जिसने उँगली उठाई
समूचे हिंदू समुदाय की तरफ़,
इसे एक शर्मनाक घटना बताते हुए,
क्या उन्हें वही उँगली
स्वयं अपनी तरफ़ नहीं उठानी चाहिए थी?
यदि अपने गिरेबान में
झाँक कर देखा होता उन्होने
तो आज यह समस्या,
समस्या न बनी रहती

अध्याय-४ ग्यारहवीं शताब्दी का श्री विष्णु-हरि का शिलालेख जो स्पष्ट रूप से हमें बताता है कि यह मंदिर था श्री राम का

राष्ट्रपति के उस प्रश्न के उत्तर में यह एक अच्छा प्रमाण होता

६ दिसंबर १९९२ को जब वह ढाँचा गिरा तो उसके मलबे से बहुत कुछ मिला जिसमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण शिलालेख था, जो एक अच्छा प्रमाण बन सकता था राष्ट्रपति के उस प्रश्न के उत्तर में जो उन्होनें सर्वोच्च न्यायालय से पूछा था। उस शिलालेख में २० पंक्तियाँ थीं। शिला ५ फ़ुट लंबी, २ फ़ुट चौड़ी, अढ़ाई इंच मोटी और बहुत ही भारी थी, जिसे ४ हट्टे-कट्टे कर-सेवक बड़ी कठिनाई से उठा पाए थे। वह शिलालेख संस्कृत में, ११वीं सदी की नागरी लिपि में थी। यह शिला उस मंदिर के दीवार पर लगाई गई होगी जिसके निर्माण का वर्णन इस शिलालेख में मिलता है - जिस मंदिर तोड़ कर उसके ऊपर यह मस्जिद बनाई गई होगी। १५वीं पंक्ति हमें स्पष्ट रूप से बताती है कि एक सुंदर मंदिर श्री विष्णु-हरि का, भारी पत्थरों से बनाया गया था। १७वीं पंक्ति हमें बताती है कि यह सुंदर मंदिर, मंदिरों की नगरी अयोध्या जो कि साकेत-मंडल में था - यहाँ ध्यान दीजिए साकेत उस ज़िले का नाम हुआ करता था जिसका अयोध्या एक अंग था - अर्थात यह लिखावट इसी अयोध्या के बारे में थी, जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं यहाँ। १९वीं पंक्ति हमें बताती है भगवान श्री विष्णु, जिन्होने मानभंग किया राजा बलि का, व अंत किया दशानन रावण का। यह स्पष्ट रूप से हमें बताती है कि यह मंदिर था श्री राम का, जिन्होने अंत किया था रावण का (संदर्भ - डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ ११७-१२०, उद्धृत - प्रॉफ़ेसर अजय मित्र शास्त्री (द चेयरमैन ऑफ़ एपिग्राफ़िकल सोसायटी ऑफ़ इंडिया) और उनका प्रकाशन पुरातत्व में (ऑफ़िशीयल जर्नल ऑफ़ इंडियन आर्किओलॉजिकल सोसायटी) नंबर २३ (१९९२-१९९३)। डॉ एस पी गुप्ता हमें बताते हैं कि बाबरी तरफ़ के प्रॉफ़ेसर आर एस शर्मा एवं अथार अली ने कहा था कि जब तक, उन्हें उन दिनों का ऐसा कुछ लिखा हुआ नहीं दिखाया जाता, जो इस बात को दर्शाता हो कि वहाँ एक जमाने में राम मंदिर हुआ करता था, तब तक वे यह मानने को तैयार नहीं, कि वहाँ कोई हिंदू मंदिर रहा होगा। अब

जब श्री विष्णु-हरि का शिलालेख मिला तो ये कहने लगे कि यह शिलालेख जाली है। इस पर डॉ एस पी गुप्ता कहते हैं, कि हम अब भी अपनी बात दोहराते हैं, कि आप बुलाइए विश्व के किसी भी कोने से किसी भी विशेषज्ञ को, और यदि परीक्षण के बाद वे कह दें कि यह शिलालेख जाली है, तो हम दो लाख रुपये देने को तैयार हैं। इस चुनौती का वे कोई उत्तर नहीं देते (संदर्भ - डॉ एस पी गुप्ता, पृष्ठ १२०)। न किसी निरपेक्ष विशेषज्ञ को परीक्षण के लिए बुलाते हैं, अपितु समय-समय पर समाचार पत्रों में झूठा बयान अवश्य देते रहते हैं, जिससे लोग झूठ को सच मानते रहें। डॉ कोएनराड एल्स्ट हमें बताते हैं, कि यदि ये अपने आप को धर्मनिरपेक्ष कहने वाले, सचमुच अपनी ही कही हुई बात पर विश्वास करते, तो अवश्य ही वे विदेशों से निरपेक्ष पुरातत्वज्ञों को बुला कर इस बात का भाँडा फोड़ सकते थे, कि सब जाली हैं, पर उन्होने ऐसा नहीं किया। वह पूछते हैं ऐसा क्यों? वह बताते हैं कि यह मामला तब मंत्री अर्जुन सिंह के अधिकार क्षेत्र में था, जो इस बात की तुरंत व्यवस्था करा सकते थे, क्योंकि वह भी इन लोगों की तरह अपने आप को धर्मनिरपेक्ष गुट का मानते थे। पर हुआ यह कि कपिल कुमार, बी डी चट्टोपाध्याय, के एम श्रीमाली, सुविरा जायसवाल और एस सी शर्मा ने ज़ोर शोर से इसे जाली क़रार दिया (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १८१-१८२)।

कब तक छुपाओगे सत्य को बादलों के पीछे?
एक दिन सूरज की रोशनी की तरह
बाहर आएगा वह, अँधेरे को चीर कर!

अध्याय-५ तीन हज़ार घंटे सोचने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय किया कि वे निर्णय नहीं करेंगे! जनता ने उन्हें जो दायित्व दिया उसका निर्वाह कौन करेगा?

मुस्लिम लीडरों ने दावा किया था कि यदि यह सिद्ध कर दिया जाए कि उस जगह पर मस्जिद के पहले एक मंदिर हुआ करता था तो वे वह जगह

हिंदुओं को दे देंगे। इस बात पर चंद्र शेखर सरकार ने यह तय किया कि सारा निर्णय इस बात पर टिका होना चाहिए कि क्या वहाँ मस्जिद के पहले मंदिर था? भारत के राष्ट्रपति ने यही प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय से किया। छुट्टियों एवं गर्मी की छुट्टियों को छोड़ कर, सर्वोच्च न्यायालय के ५ न्यायाधीशों ने सप्ताह में ३ दिन, फ़रवरी से सितंबर १९९४ तक, मुकदमे पर सुनवाई की और अंत में निर्णय लिया कि हम उत्तर नहीं देना चाहते (संदर्भ - डॉ अरुण शोउरी, पृ रोमन १०)।

जरा सोचिए, ३,००० घंटे उन्होने बिताए इस बात पर और अंत में परिणाम लड्डू। पूछिए ३,००० घंटे कैसे? फ़रवरी से सितंबर तक ८ महीने होते हैं। ५ न्यायाधीश गुणा ८ महीने, गुणा ४ सप्ताह प्रति महीने, गुणा ३ दिन प्रति सप्ताह, गुणा ७ घंटे प्रति दिन, कुल ३,३६० घंटे। इस में से माना कि ३६० घंटे उनकी छुट्टियों के। बाकी रहे ३००० घंटे। भारत के राष्ट्रपति को उत्तर दिया सर्वोच्च न्यायालय के ३ न्यायाधीशों ने। उनके नाम थे मुख्य न्यायाधीश एम एन वेन्कटाचालिआह, न्यायाधीश जे एस वर्मा, न्यायाधीश जी एन रे। हम बड़े आदर के साथ जवाब देना अस्वीकार करते हैं और इसे आपको वापस भेजते हैं। पैरा १००(११) उनके न्याय का। उन तीनों ने अपने इस न्याय पर नई दिल्ली में २४ अक्टूबर १९९४ को हस्ताक्षर किए थे (संदर्भ - द सुप्रीम कोर्ट जजमेंट, पृ ६४)। भारत के राष्ट्रपति को उत्तर दिया सर्वोच्च न्यायालय के २ न्यायाधीशों ने। उनके नाम थे न्यायाधीश ए एम अहमदी, न्यायाधीश एस पी भरूचा। राष्ट्रपति को हम वापस करते हैं आदर के साथ, बिना उत्तर दिए। पैरा १६५ उनके न्याय का। उन दोनों ने अपने इस न्याय पर नई दिल्ली में २४ अक्टूबर १९९४ को हस्ताक्षर किए (संदर्भ - द सुप्रीम कोर्ट जजमेंट, पृ ८८)। राजनयिक नेता जो जनमत तैयार करते हैं, क्या उनका यह कर्तव्य नहीं था कि वे इन तथ्यों को बार-बार जनता के सामने लाते? यह न करके उन्होने जनता को बार-बार यही कहा कि हमें सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का अनुसरण करना चाहिए। हमारे राज नेता चाहते हैं कि हम भागते रहें, इस मृगमरीचिका के पीछे, तब तक, जब तक हम थक हार कर बैठ न जाएँ। भारत के राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से क्या पूछा था? बस यही कि क्या वहाँ मस्जिद के पहले मंदिर हुआ करता था? सर्वोच्च न्यायालय ने क्या कहा - हम उत्तर नहीं देगे। कब कहा, ३,००० घंटे सोचने के बाद। इसे बड़े सुंदर ढंग से, पंजाब उच्च

न्यायालय के, अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश एम रामा जॉयस ने, (राष्ट्र के संविधान के धारा १४३(१) के अंतर्गत राष्ट्रपति के विशेष संदर्भ संख्या १/१९९३ का उद्धरण देते हुए), कहा - सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय किया, कि वे निर्णय नहीं करेंगे (संदर्भ - मुख्य न्यायाधीश एम रामा जॉयस, पृ ९६)।

कितना सुंदर निर्णय था हमारे सर्वोच्च न्यायालय का। न्याय हो तो ऐसा। इतिहास के पन्नों पर सुनहरे अक्षरों में लिखा जाना चाहिए इसे। अब तक हमने देखी हमारे सर्वोच्च न्यायालय की मुस्तैदी, ४४ साल और ८० करोड़ हिंदुओं की भावनाओं की क़ीमत, इन न्यायाधीशों की नज़रों में। और अब देखिए जब इनकी पीठ पर लात पड़ती है तो कितना दर्द होता है इन्हें। अभी की बात है, मुख्य न्यायाधीश ने कहा - जब समाचार पत्रों ने, कामवासना के कलंक के संदर्भ में, कई न्यायाधीशों का नाम उछाला, तो मैं कई रातों तक सो नहीं सका (संदर्भ - द फ़्री प्रेस जर्नल, मुंबई संस्करण, २९ मार्च २००३, पृ ३)। मज़े की बात तो यह है, कि तुरंत तहक़ीक़ात की गई। उन्होने ५० साल नहीं लिए, क्योंकि कालिख उनके मुँह पर आ पड़ी थी। पर जब प्रश्न उठता है ८० करोड़ हिंदुओं की भावनाओं की, तो ४४ तो क्या उसके बाद और ८ वर्ष और बीत चुके हैं, पर सर्वोच्च न्यायालय तो यही सोचती - हम हैं सर्वोच्च, अतः हमारी मर्ज़ी, हम लें ५२ साल या १०० साल, कौन पूछने वाला हमें? ये आज भी अपने आप को, अँग्रेज़ों की तरह, इस देश के शासक वर्ग का हिस्सा मानते हैं! यह है उनकी अँग्रेज़ी ईसाई शिक्षा पद्धति का नतीजा!

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आदेश पर, ए एस आई (आकिऑलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया - भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग) ने एक बार पुनः खुदाईयाँ की, और २५ अगस्त २००३ को अपना ५७४ पृष्ठों का रिपोर्ट इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया। इस रिपोर्ट के अनुसार, उस विवादास्पद स्थान पर, एक पुरातन मंदिर का पाया जाना, एक बार फिर सिद्ध होता है। पर सुन्नी सेंट्रल वक़्फ़ बोर्ड ने इस पर विरोध प्रकट किया है। तब से आज तक ४ महीने बीत चुके हैं पर न्यायालय अभी तक सोच ही रही है! इस प्रकार यह खेल तमाशा चलता ही रहेगा, तब तक, जब तक न्यायालय सोचती रहेगी, और अपना निर्णय देने में, पहले की तरह टालमटोल करती रहेगी। न्यायालयों को बताएँ कि हम कर देते हैं अपने ख़ून पसीने की कमाई से, जिसके बूते पर बैठे वे राज करते हैं उन न्यायालयों पर। उन्हें बताइए कि उनका भी कुछ कर्तव्य बनता है, उस

जनता के प्रति, जिसका नमक खाते हैं वो।

न्याय का समय पर न दिया जाना
अपने आप में अन्याय के समान होता है।
उन्हें कटघरे में कौन खड़ा करे
जो समूचे राष्ट्र के प्रति अन्याय करते हैं?

अध्याय-६ धर्मनिरपेक्षता का स्वाँग भरने वालों का इसे हिंदू समुदाय के विरुद्ध षड़यंत्र नहीं तो और क्या कहेंगे?

२४ दिसंबर २००२ को टाइम्स ऑफ़ इंडिया (मुंबई संस्करण) ने एक ख़बर छापी जिसमें उन्होने शीरीन रत्नागर को मुम्बई के नामी पुरातत्वज्ञ एवं जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय के सेवानिवृत पुरातत्व का प्रॉफ़ेसर बताया। शीरीन रत्नाकर ने पाठकों को विश्वास दिलाया कि वहाँ मस्जिद के पहले मंदिर होने के उपयुक्त पुरातात्विक (खुदाई के) प्रमाण नहीं है। मैने अगले ही दिन टाइम्स ऑफ़ इंडिया को लिखा, बहुत सारे पुरातात्विक (खुदाई के) प्रमाणों का उल्लेख कर, पर टाइम्स ऑफ़ इंडिया ने उसे नहीं छापा, न मेरे पत्र का कोई उत्तर दिया। मेरे मन में प्रश्न उठा, आख़िर टाइम्स ऑफ़ इंडिया का उद्देश्य क्या है? पाठकों तक सच्चाई को पहुँचाना, या उसे छुपाना और पाठकों के मन में वहम फैलाना? इसी प्रकार की कई और झूठ हमने टाइम्स ऑफ़ इंडिया को फैलाते देखा, जिनका विवरण हम अपनी अन्य पुस्तकों में देंगे उचित स्थानों पर। प्रत्येक बार हम उन्हें लिखते रहे और वे उसे अनदेखा करते रहे, उसके बाद हमने निर्णय लिया कि हम ऐसे समाचार पत्र को नहीं पढेंगे जो जान बूझ कर झूठ को फैलाता है और सच को दबाता है। प्रत्येक व्यक्ति जो ऐसे समाचार पत्र को ख़रीदता है वह एक मिथ्यावादी को परोक्ष रूप से सहायता करता है। अपने नाम और पद का लाभ उठाकर, शीरीन रत्नागर जैसे प्रॉफ़ेसर यदि साधारण जनता को गुमराह करते रहेंगे, तो जनता को एक दिन निर्णय लेने पर बाध्य होना पड़ेगा कि ऐसे प्रॉफ़ेसरों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए, क्योंकि ये विश्वविद्यालयों के प्रॉफ़ेसर सरकार के पैसों पर जीते है, जो जनता के कर से

आता है, और जनता का खा कर ये निर्लज्ज जनता को गुमराह करते हैं। डॉ कोएनराड एल्स्ट लिखते हैं कि बाबरी मस्जिद के पक्ष वाले, ये अपने आप को धर्मनिरपेक्ष कहने वाले, अक्सर खुदाई का विरोध करते रहे, जबकि हिंदू पक्ष बराबर इसकी माँग करता रहा (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १८२)। पूछिए ऐसा क्यों? क्योंकि ये झूठे धर्मनिरपेक्ष (जो वास्तव में कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट बुद्धिजीवी हैं, धर्मनिरपेक्षता की ख़ाल ओढ़े हुए) जानते थे कि जितनी खुदाई होगी, उतनी ही उनकी झूठ की पोल खुलती जाएगी।

मुस्लिम लीडरों ने दावा किया था कि यदि यह सिद्ध कर दिया जाए कि उस जगह पर मस्जिद के पहले एक मंदिर हुआ करता था तो वे वह जगह हिंदुओं को दे देंगे। इस बात पर चंद्र शेखर सरकार ने यह तय किया कि सारा निर्णय इस बात पर टिका होना चाहिए कि क्या वहाँ मस्जिद के पहले मंदिर था? चंद्रशेखर सरकार के अनुरोध पर बीमैक व विहिप इस बात के लिए सहमत हुए कि वे अपने-अपने पक्ष के ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करेंगे (दिसंबर १९९० व जनवरी १९९१) और उन पर बहस कर इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि क्या जन्मभूमि-मस्जिद के पहले वहाँ मंदिर हुआ करता था। ध्यान दीजिए १९९०-१९९१ की बात है यह। बाबरी ढाँचा अभी गिरा नहीं था।

प्रॉफ़ेसर हर्ष नारायण, प्रॉफ़ेसर बी पी सिन्हा, डॉ एस पी गुप्ता, डॉ बी आर ग्रोवर एवं श्री ए के चैटर्जी ने विहिप (विश्व हिंदू परिषद) का प्रतिनिधित्व किया। डॉ एस पी गुप्ता विहिप से विधिवत जुड़े हुए थे पर अन्य लोग नहीं। बीमैक (बाबरी मस्जिद ऐक्शन कमिटी) के लोग, आइसीएचआर (इंडियन काउंसिल ऑफ़ हिस्टॉरिकल रिसर्च - भारतीय ऐतिहासिक खोज परिषद) के प्रॉफ़ेसर इर्फ़ान हबीब के पास गए, जिन्होने सचमुच के इतिहासज्ञों की एक टोली जुटाई जिसका नेतृत्व प्रॉफ़ेसर आर एस शर्मा ने किया। इन लोगों ने इस बात का अच्छा प्रचार किया कि वे सब स्वतंत्र इतिहासज्ञ थे। बाद में यह बात सामने आई कि वे सभी बीमैक की चाकरी में थे और वे जो भी कह रहे थे वह, स्वतंत्र रूप से नहीं, अपितु अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर, बीमैक से पैसा लेकर। यह तो उनका चरित्र है - चरित्र जो झूठ की बुनियाद पर टिका हुआ है। यह एवं बहुत सारी अन्य बातें उनके चरित्र के बारे में हम जान पाते है युरोपियन इतिहासज्ञ डॉ कोएनराड एल्स्ट से, जिन्होने भारत में आकर और यहाँ रहकर इन बातों पर खोज बीन की। प्रश्न उठता है कि उन्होने आरंभ से जान बूझकर

इस झूठ का प्रचार क्यों किया? इस झूठ को बड़े समाचार पत्रों के माध्यम से फैलाने की क्या आवश्यकता थी? इसके पीछे छुपी एक बड़ी सोची समझी चाल थी। वे जानते थे कि जनता उस बात को याद रखती है, जो बात शुरू-शुरू में ज़ोर-शोर से कही जाती है। आरंभ में पाठकों की रुचि प्रत्येक नए विषय पर होती है, पर समय के साथ वे विषय पुराने पड़ जाते हैं और पाठकों की रुचि उनसे हट जाती है। उनकी जगह नए विषय पाठकों की रुचि को आकर्षित करते हैं। लोग वही याद रखते हैं जो उन्होने आरंभ में हो-हल्ले के साथ सुनी थी। बाद में, अगर कहीं समाचार पत्र के किसी छोटे से कोने में एक छोटा सा खंडन या विरोध छपता भी है, तो उन्हीं पाठकों की दृष्टि उस पर बहुधा पड़ती ही नहीं। इस बात का भरपूर लाभ उठाया उन्होने। जनता के मन पर यह छाप छोड़ दी कि वे सभी स्वतंत्र इतिहासज्ञ थे, और जो कुछ भी वे कह रहे थे, बिना किसी स्वार्थ के, केवल सत्य से प्रेरित हो कर के, जबकि यह सब वे बीमैक से पैसा लेकर कर रहे थे, सत्य को असत्य से ढाँकने के लिए, और इसलिए उन्होनें बेईमानी का सहारा लिया आरम्भ से ही।

प्रॉफ़ेसर इर्फ़ान हबीब काफ़ी चालाक निकले। उन्होने स्वयं इस टोली का नेतृत्व नहीं किया। वे जानते थे कि मुस्लिम होने के कारण उनकी स्वतंत्र भावना पर संदेह किया जा सकता है। उन्होने ख़रीद लिया हिंदू नाम वाले कॉम्युनिस्टों को सहजता से जो पहले से ही कट्टर हिंदू-विरोधी रहे थे। पर साधारण जनता इस बात को नहीं जानती थी। वे जब शर्मा नाम पढ़ते तो यही समझते कि जब एक ब्राह्मण कह रहा है तो संभवतः उसकी बात सच ही होगी। वे क्या जानते कि यह ब्राह्मण की चमड़ी में छुपा, एक घोर नास्तिक (कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट) है, जो श्री राम तो क्या, भगवान तक के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता। इर्फ़ान ने शर्मा को, और शर्मा ने अपनी टोली को वैसे ही चुना। चोर-चोर मौसेरे भाई की कहावत तो आपने सुनी ही होगी?

आरंभ से ही, दोनों पक्षों की सहमति से, ऐसा निश्चय किया गया था कि विहिप को, उनके प्रमाणों पर, बीमैक लिखित उत्तर देगी १० जनवरी के पहले, पर उन्होने अभी तक यह किया नहीं था। उसके बाद और दो सप्ताह बीत चुके थे, २४ जनवरी को दोनों पक्ष मिले, अपने-अपने प्रमाणों पर बात करने के लिए। अब तो कम से कम उन्हें वह लिखित उत्तर देना था, पर नामी कॉम्युनिस्ट इतिहासज्ञ प्रॉफ़ेसर आर एस शर्मा ने इस बैठक में कहा, कि उन्हें और उनके

साथियों को, विहिप के द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रमाणों को अध्ययन करने का समय ही नहीं मिला। यहाँ दो बातें ध्यान देने के योग्य हैं। पहली कि यह टालमटोल की नीति। समय पर (१० जनवरी) उत्तर न देना। उसके बाद और समय बीतने देना। बाद में (२४ जनवरी) कहना कि हमें आपके प्रमाणों को पढ़ने का समय ही नहीं मिला, इतने व्यस्त थे हम! पर दूसरी बात इससे भी कहीं संगीन थी जिसमें साफ़ बेईमानी झलकती है, सुनिए उसकी कहानी। २४ जनवरी को जिस दिन उन्होने बैठक में कहा कि हमें आपके प्रमाणों को देखने का समय तक नहीं मिला, उसके एक सप्ताह पहले ही इसी प्रॉफ़ेसर आर एस शर्मा ने अपने ४१ इतिहासज्ञ साथिओं के हस्ताक्षर के साथ एक वक्तव्य जारी किया था, जिसका उन्होने बहुत ज़ोर-शोर से प्रचार करवाया था। उन ४२लों ने उस वक्तव्य में भारत की जनता को यह कहा था कि निश्चित रूप से, अवश्य ही, कहीं भी, कोई भी, प्रमाण नहीं है कि उस स्थान पर पहले कोई राम-मंदिर था। इसी बात पर प्रॉफ़ेसर आर एस शर्मा ने 'राम के अयोध्या का सांप्रदायिक इतिहास' (अँग्रेज़ी में) नाम की एक छोटी पुस्तक भी छपवाई थी (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १५२)। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि यदि सचमुच उन ४२ओं ने विहिप के दिए हुए प्रमाण पढ़े नहीं थे, तो किस आधार पर ज़ोर-शोर से उन्होने जनता को बताया था कि निश्चित रूप से, अवश्य ही, कहीं भी, कोई भी, प्रमाण नहीं है कि उस स्थान पर पहले कोई राम-मंदिर था? इसी प्रश्न का दूसरा पहलू यह है कि यदि वे इतने अधिकार के साथ कह सकते थे कि निश्चित रूप से, अवश्य ही, कहीं भी, कोई भी, प्रमाण नहीं है कि उस स्थान पर पहले कोई राम-मंदिर था, तो फिर २४ जनवरी की बैठक में उन्होने क्यों यह बहाना प्रस्तुत किया कि हम बहस के लिए तैयार नहीं हैं क्योंकि हमने आपके दिए प्रमाण अभी तक पढ़े ही नहीं हैं? कौन सा उनका असली झूठ था? यह कि निश्चित रूप से, अवश्य ही, कहीं भी, कोई भी, प्रमाण नहीं है कि उस स्थान पर पहले कोई राम-मंदिर था, या कि इस वक्तव्य को जारी करने के बहुत पहले आपने हमें जो प्रमाण अध्ययन करने के लिए दिए थे उन्हें हमने पढ़े तक नहीं? ऐसा उन्होने क्यों किया? वे जानते थे कि जनता के मन में घर कर जाएगी वह बात जो पहले एक बार ज़ोर-शोर से (झूठे स्वतंत्र इतिहासज्ञों के द्वारा) प्रचारित की गई, और जनता उसे ही याद रखेगी। एक सप्ताह के पश्चात बैठक में वास्तव में क्या हुआ इस बात की जनता को कोई जानकारी

तक न होगी क्योंकि समस्त बड़े समाचार पत्र उसे छापेंगे ही नहीं। यह एक सोची समझी साज़िश थी। अगली बैठक निश्चित की गई अगले दिन २५ जनवरी के लिए। पर बीमैक के इतिहासज्ञ आए ही नहीं। उन्होने न तो ऐसे कोई लिखित प्रमाण उपस्थित किए जो दर्शाते हों कि राम मंदिर वहाँ कभी न था, न ही उन्होने कोई लिखित खंडन दिया विहिप के प्रमाणों का, न ही उन्होने उपलब्ध प्रमाणों पर आमने-सामने बैठ कर चर्चा की, वे इससे दूर ही रहे। इस प्रकार से भारत सरकार की चेष्टा व्यर्थ गई, एक समाधान खोजने की, उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर, आपसी चर्चा से (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १५३)।

आप देख रहे हैं कि यह एक सोची समझी चाल का नतीजा है। जब प्रमाणों की बात आए तो पीछे हट जाओ। पर साथ ही बड़े समाचार पत्रों का सहारा लेकर झूठ को फैलाओ ताकि जनता झूठ को ही सच्चाई जाने और ऐसा ही माने।

डॉ कोएनराड एल्स्ट के शोधों से हमें पता चलता है, कि जब जन सभा में यह प्रश्न पूछा गया कि इतिहासज्ञों के वाद-विवाद का क्या परिणाम हुआ, तो प्रॉफ़ेसर इर्फ़ान हबीब (अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के इतिहासज्ञ) और सुबोध कांत सहाय (जो उस समय गृह मंत्री थे) ने कहा कि विहिप वाले भाग गए वाद-विवाद से। और उनकी समाचार पत्रों के साथ मिलीभगत देखिए, सभी बड़े समाचार पत्रों ने इस सरासर झूठ का खंडन छापने तक से मना कर दिया (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १७०)। जनता को झूठ की जानकारी दी गई और सच को दबा दिया गया। यह है चरित्र हमारे बड़े समाचार पत्रों का। यह चरित्र उस ईसाई शिक्षा पद्धति की देन है जहाँ हम अपने बच्चों को भेजने में बड़ा गर्व अनुभव करते हैं। समस्या को समस्या के रूप में देखना पर्याप्त नहीं, हमें उसकी जड़ तक पहुँचने की आवश्यकता है। अपनी आने वाली पुस्तकों में हम इस समस्या के जड़ तक आपकी यात्रा कराएँगे, धीरे-धीरे एक-एक कदम लेकर। अधर्म जब फैलता है चारों तरफ़ तो घोर अँधेरा कर देता है। तब आवश्यकता होती है किसी अर्जुन की जो अधर्म का नाश करे।

डॉ कोएनराड एल्स्ट अपने खोजों के परिणाम स्वरूप लिखते हैं - अयोध्या में (मस्जिद के पहले मंदिर होने) के प्रमाणों पर इतिहासज्ञों की जो बहस हुई थी (१९९०-१९९१ के दौरान) उसके बारे में अधिकांशतः लोग नहीं जानते। अधिकतर अँग्रेज़ी समाचार पत्र एवं सरकारी टीवी निरंतर बीमैक (बाबरी

मस्जिद ऐक्शन कमिटी) के पक्ष में रही थीं और उन्होने सच्ची ख़बरों को जन-साधारण तक पहुँचने नहीं दिया। उनके समाचार अपूर्ण हुआ करते थे। जैसे ही बीमैक की हार स्पष्ट हुई, उनकी ख़बरें क्रमशः धुंधली होती गई। उद्धृत - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १८७ अँग्रेज़ी समाचार पत्रों से तात्पर्य है अँग्रेज़ी समाचार पत्र एवं उनके भारतीय भाषाओं में संस्करण। भविष्य के इतिहासज्ञ यह जानेंगे कि मस्जिद के पहले मंदिर न होने का तर्क, शैक्षिक-कपट एवं राजनीति-प्रेरित-पाण्डित्य का एक ज्वलंत उदाहरण थी। शैक्षिक, सांस्थानिक एवं मीडिया की शक्ति के द्वारा एक नई शैक्षिक-पत्रकारी सहमति तैयार की गई थी, जिसके द्वारा जाने-माने ऐतिहासिक सत्य को (कपट के द्वारा) झुठलाया गया, और उन लोगों के मन में इस भ्रम को फैलाया गया जो समाज में प्रतिष्ठावान एवं प्रभावशाली तो थे पर जिन्हें ऐतिहासिक सत्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था। पर सत्य तो सत्य ही रहेगा और उसे निरंतर छुपाए जाने की कोशिश छुप न सकेगी क्योंकि नई पीढ़ी के विद्वान सारी बातों पर पुनः अनुसंधान करेंगे। उद्धृत - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ २१-२२

सोचिए १९९०-१९९१ की बात है यह। बाबरी ढाँचा अभी गिरा नहीं था। उसके गिरने की नौबत भी न आती यदि इन बीमैक के विद्वानों(?) में थोड़ी भी ईमानदारी बची होती। पर ऐसा होता कैसे? मैं उन्हें छद्म धर्मनिरपेक्ष नहीं कहूँगा, कारण निरपेक्षता से उनका दूर-दूर तक का संबंध नहीं। तब क्यों मैं उन्हें निरपेक्षता का गौरव प्रदान करूँ? छद्म कहते हुए भी तो मैं उन्हें उसी नाम धर्मनिरपेक्ष की संज्ञा देता हूँ। छद्म कहूँ या न कहूँ, पर निरपेक्ष संज्ञा की छवि तो पाठक के मन पर घर कर ही जाती है। तो क्यों न मैं उन्हें उसी नाम से बुलाऊँ, जो वास्तव में वे हैं, कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट! ये कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट भगवान के अस्तित्व को तो मानते नहीं। उनके लिए भगवान एक ऐतिहासिक संकल्पना है जैसा कि लक्ष्मी लिओ ने मुझे लिखा था। जो यह मानते हैं कि भगवान इतिहास की वस्तु हैं, और ये लोग उस इतिहास को लिखने वाले हैं। जो भगवान को नहीं मानते उनका ईमान क्या! उन्हें मैं किस प्रकार की श्रद्धा दे सकता हूँ?

डॉ कोएनराड एल्स्ट हमें यह भी बताते हैं कि कम से कम चार बार विहिप के विद्वानों ने बीमैक के विद्वानों को प्रमाण छुपाते या प्रमाण नष्ट करते हुए पकड़ा। ये वे अवसर थे जिन पर ये चोरियाँ पकड़ी गई। कितनी और ऐसी

चोरियाँ जो पकड़ में नहीं आईं उनका हमें ज्ञान तक नहीं। इन चार पकड़ी गई चोरियों का खंडन बीमैक के विद्वानों ने नहीं किया। न ही बीमैक के विद्वानों ने ऐसा कोई आरोप विहिप के विद्वानों पर लगाया (संदर्भ - डॉ कोएनराड एल्स्ट, पृ १७-१८)।

इससे स्पष्ट होता है कि जहाँ एक तरफ़ विहिप के विद्वानों को चोरी का सहारा लेना नहीं पड़ा क्योंकि सच्चाई उनके साथ थी, वहीं दूसरी तरफ़ बीमैक के विद्वान बार-बार झूठ और चोरी का सहारा लेते रहे, अपनी झूठी बुनियाद को छुपाए रखने के लिए। सभी बड़े समाचार पत्रों ने भी उनका भरपूर साथ दिया। संभवतः, धन में बड़ी शक्ति होती है?

देश का दुर्भाग्य यह कि हमारे न्यायाधीश भी इन चोर-विद्वानों से अत्यंत प्रभावित रहे हैं। यदि ये चोर-विद्वान समाचार पत्रों के द्वारा इस बात की घोषणा करते हैं कि बाबरी ढाँचे के नीचे मंदिर नहीं था, तो ये न्यायाधीश उससे एक कदम आगे बढ़ कर जानने की चेष्टा नहीं करते कि क्या वे उन्हें मूर्ख तो नहीं बना रहे हैं। भारतवर्ष के राष्ट्रपति ने उनसे यही प्रश्न पूछा था, पर इन न्यायाधीशों ने इतने सारे प्रमाणों के रहते हुए भी, ३००० घंटे समय नष्ट करने के बाद, यह जानने की चेष्टा नहीं की कि सत्य क्या है। उनके आचरण से ऐसा लगता है कि उन्हें सत्य से कुछ लेना-देना नहीं है।

अयोध्या बहस ने हिंदुओं में एक ऐतिहासिक बोध को जगाया। अतः अब यह कुछ समय की ही बात है कि (अपने आप को) धर्मनिरपेक्ष (कहने वाले) इतिहासज्ञों के द्वारा तैयार किए जाली इतिहास का भाँडा फूट जाएगा। उनकी जीविका और प्रतिष्ठा अब दाँव पर लगी है। राजनयिक व शासकीय स्वार्थों के प्रश्रय की वजह से, इन पुरुष और इन स्त्रियों ने अनेक वर्षों से वह मान्यता, पद एवं विशेष सुविधाएँ भोगीं, जो उनकी योग्यताओं की तुलना में असाधारण रूप से अधिक थीं। उससे भी बुरी बात यह है कि उन्होने अपने राजनीतिक उद्देश्यों एवं पेशे गत स्वार्थों की उन्नति के लिए बड़ी मात्रा में इतिहास में जालसाज़ियाँ की। आज दाँव पर लगी है इन पुरुषों और इन स्त्रियों की न सिर्फ़ जीविका और प्रतिष्ठा बल्कि एक साधारण मानव के रूप में उनकी पहचान भी। यह स्वीकार करना कठिन होता है कि हम असत्य के आधार पर जीते रहे थे, उससे भी कठिन होता है यह स्वीकार करना कि हमने अपनी जीविका की नींव रखी थी झूठ पर। उद्धृत - डॉ एन एस राजाराम, पृ ९१-९२

ऐसे बेईमानों को उचित सजा का प्रावधान हमारे आधुनिक न्यायशास्त्र में नहीं है। आज हमारे समाज में इसलिए बौद्धिक बेईमानी इतनी बढ़ गई है। जब समाज के कर्णधार ही बेईमानों की जात होगी तो बाक़ी प्रजा कैसी पैदा होगी? जब कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट प्राध्यापक और प्राध्यापिकाएँ ही बेईमानों के सरताज होंगे तो उनके पद चिह्नों पर चलने वाले छात्र-छात्राएँ कैसे बनेगें? यह प्रश्न आप स्वयं अपने आप से पूछ कर देखिए!

अध्याय-७ इस सारे समस्या की जड़ जहाँ है वहीं हमें इसका हल खोजना होगा

अब उनके पद चिह्नों पर चलने वाली एक आदर्श छात्रा का उदाहरण देखिए। प्रॉफ़ेसर मंजरी काट्ज़ू तुलना करतीं हैं श्री राम की हिटलर व मुसोलिनी से (संदर्भ - पुस्तक समीक्षा, द फ़्री प्रेस जरनल में प्रकाशित, मुम्बई संस्करण, ३० मार्च २००३, स्पेक्ट्रम पृष्ठ ६ स्तम्भ ३)। इस पर उन्हें मिलती है डॉक्टरेट की उपाधि। धन्य है वह विश्वविद्यालय जिसने दी उपाधि उनको डॉक्टर की, बनाया उन्हें प्रॉफ़ेसर। उन्हें डॉक्टर की उपाधि देने वाले एवं उन्हें प्रॉफेसर बनाने वाले भी तो ये प्राध्यापक एवं प्राध्यापिकाएँ ही हैं जिन्होनें झूठ विरासत में पाई है और जो झूठ बाँटते फिरते हैं। इस प्रकार से उनकी फ़सलें बढ़ती जाती हैं - एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी तैयार होती रहती है। सोचिए क्या होगा, आप के बच्चों का, जो सीखेंगे उनसे कि हमारे श्री राम थे, एक जानवर उन हिटलर व मुसोलिनी की तरह। और यह मंजरी काट्ज़ू हैं कौन? इनके दादाजी हुआ करते थे अध्यक्ष विश्व हिंदू परिषद के। वही विश्व हिंदू परिषद जो श्री राम मंदिर के लिए लड़ने को बना था! क्या बीती होगी उन पर? क्या उन्होने सोचा होगा कि एक दिन ऐसे भी नमूने पैदा होंगे उनके वंश में? दोष वंश का नहीं, दोष शिक्षा का है। हम भेज देते हैं अपने बच्चों को ईसाई स्कूलों में और फिर दिल्ली के जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय जैसे कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्टों के गढ़ में। ईसाई और नास्तिक कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट उन्हें सिखाएँगे क्या? यही तो सीखेंगे, जो सीखा है हमारी प्यारी मंजरी काट्ज़ू ने!

कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट को आसानी से पहचानना मुश्किल है। नेहरु ने उसे एक नया नाम दे दिया था - धर्मनिरपेक्ष, क्योंकि उसके पास कोई धर्म ही नहीं है। उसका धर्म होता है धन और सत्ता चाहे उसे कैसे भी हासिल किया जाए।

धर्मनिरपेक्षता की आड़ में यह कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट बुद्धिजीवी हिंदू समाज में ब्राह्मण की छवि को सतत मलिन करने की चेष्टा में लगा रहता है, क्योंकि उसे स्वयं हिंदू समाज में ब्राह्मण के स्थान पर अधिकार जमाना है। हिंदू समाज में ब्राह्मण हुआ करता था अन्य वर्णों का अध्यापक एवं दिग्दर्शक। उसी स्थान की होड़ में परोक्ष रूप से लगे रहे हैं, ये आज के कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट बुद्धिजीवी एवं कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट प्राध्यापक-प्राध्यापिकाएँ। यही कारण रहा है कि वे हर एक उस कोशिश में लगे रहते हैं, कि किस प्रकार से ब्राह्मण का स्थान हिंदू समाज में एक अवांछित स्थान बना दिया जाए। ईसाई मिशनरी सेंट ज़ेवियर ने आरंभ की थी यह प्रक्रिया १६वीं शताब्दी में (इस विषय में विस्तार से हमारी अन्य पुस्तकों में) जिसे पूरे ज़ोर शोर के साथ आगे बढ़ाया २०वीं शताब्दी के कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट बुद्धिजीवियों ने। कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट बुद्धिजीवी कहता है अपने आप को धर्मनिरपेक्ष, पर वह है नहीं धर्मनिरपेक्ष। वह उसका मुखौटा है। भगवान को वह मानता नहीं। हिंदू को वह अपना सबसे पहला शत्रु मानता है पर स्पष्ट रूप से कहता नहीं कभी। इसलिए हम नहीं जान पाते कि वह प्रत्येक नई हिंदू पीढ़ी को कैसे थोड़ा और हिंदू-विरोधी बनाता जाता है। जो बनता है वह स्वयं भी नहीं जानता, कि वह अंदर ही अंदर, धीरे-धीरे कितना हिंदू-विरोधी बनता जा रहा है। कॉम्युनिस्ट होने के लिए यह आवश्यक नहीं कि आप कॉम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हों। आपकी सोच कॉम्युनिस्ट हो, इतना ही पर्याप्त है। यही सोच पहले आपको अहिंदू बनाता है और जैसे-जैसे इस सोच का प्रभाव आपके मानसपटल पर गहरा होता जाता है, त्यों-त्यों आप अधिकाधिक हिंदू विरोधी बनते जाते हैं। आप संभवतः लक्षणों को पहचान नहीं पाते। अपनी संतानों में ईश्वर के प्रति अविश्वास की भावना को देखिए। आप इसे अनदेखा करते जाते हैं। आप समझते हैं कि ये आज के बच्चे हैं, इसलिए ऐसा सोचते हैं। बड़े होंगे, बूढ़े होंगे तो स्वयं ईश्वर को मानने लगेंगे। इस ग़लतफ़हमी में मत रहिए। वे कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट की ज़बान नहीं बोलते 'पूँजीपति' 'सामंतवादी' इत्यादि, इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी सोच कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट नहीं। सभी धर्म भगवान को किसी न किसी रूप में मानते हैं। एक कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट है जो भगवान के अस्तित्व को नहीं मानता। हमारे देश में ये अपने आप को कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट न कहकर धर्मनिरपेक्ष कहते हैं, क्योंकि यह शब्द सुनने में अधिक आदरणीय लगता है। धर्मनिरपेक्ष कह कर ये यह जताना चाहते हैं कि वे धार्मिक

सोच जैसी संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर हैं! उनके आचरणों को देखिए, जिनके पीछे उनकी सोच झलकती है। उनकी सोच में आपको सभी धर्मों के प्रति समभाव न मिलेगा। बहुधा बुद्धिजीवी, कलाकार, चलचित्र निर्देशक, साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, प्राध्यापक, इत्यादि होने के कारण उनकी बोली मँजी हुई होती है पर बोली पर न जाएँ। उनके आचरण को देखें और उनकी सोच को पहचानें। ये आपकी संतानों को ग़लत रास्ते पर ले जा रहे हैं। जैसे-जैसे आपकी संतानें बड़ी होंगी, उनकी सोच और गहरी होती जाएगी। उनकी यह सोच फैलती जाती है, प्रभावित करती है अन्य लोगों को, अनेक माध्यमों से, उदाहरण के लिए - पत्र-पत्रिकाएँ, टीवी सीरियल, सिनेमा, टीवी वार्तालाप एवं बहस टीवी पर, साहित्य, इत्यादि। अतः सोचें आपको क्या करना है।

हिंदू ब्राह्मण को अपनी बेड़ियाँ काट कर एक बार फिर उठ खड़ा होना होगा। उसे हिंदू युवा वर्ग का शिक्षक एवं मार्गदर्शक बनना होगा। हिंदू क्षत्रिय को इसमें सहायता करनी होगी, वैसे ही जैसे श्री राम ने की थी विश्वामित्र की! आज हिंदू क्षत्रिय को उठ कर बेड़ियों में जकड़े ब्राह्मण को मुक्त कराना होगा, ताकि वह पुनः बन सके हिंदू समुदाय का शिक्षक एवं मार्गदर्शक। यदि ब्राह्मण न होता तो मैं सारे हिंदुओं को ईसाई बना चुका होता, ऐसा लिखा था सेंट ज़ेवियर ने सोसाइटी ऑफ़ जीसस को १६वीं सदी में। समय गुज़रता गया, ज़ेवियर-पुत्रों ने ब्राह्मण को बेड़ियों में जकड़ दिया और आगे चलकर नेहरु-पुत्रों ने ब्राह्मण के मुँह पर कालिख मल दी। ब्राह्मण मुँह छुपा बैठा, ज़ेवियर-पुत्रों ने हिंदू को ईसाई बनाया और नेहरु-पुत्रों ने हिंदू को कॉम्युनिस्ट बनाया। आज यदि हिंदू फिर से हिंदू बनना चाहे तो उसे ब्राह्मण को उसका खोया सम्मान देना पड़ेगा। हिंदू इतिहास हमें बताता है कि क्षत्रिय ही ब्राह्मण का रक्षक हुआ करता था - भूल गए श्री राम को? आज उस क्षत्रिय को अपना क्षात्र-धर्म निभाना होगा। यदि क्षत्रिय चूकेगा तो एक ब्राह्मण को परसा हाथ में लेकर परशुराम बनना पड़ेगा। इस बार वह परशुराम क्षत्रियों को नहीं, बल्कि ज़ेवियर-पुत्रों एवं नेहरु-पुत्रों का संहार करेगा। इस लिए हिंदू क्षत्रिय तुम्हें भी आज जागना होगा, हिंदू मर्यादा की रक्षा के लिए क्योंकि परसा उठाना ब्राह्मण की मर्यादा को नष्ट करेगा।

हमारे न्यायाधीश भी इसी अँग्रेज़ी-ईसाई शिक्षा पद्धति की देन है। यह हिंदू विरोधी मनोवृत्ति - यही कारण है कि ईसाई स्कूलों में शिक्षित और धर्मनिरपेक्ष (मार्क्ससिस्ट) प्रॉफ़ेसरों के शिष्य, हमारे ये आधुनिक न्यायाधीश, निर्णय लेने से

इतने कतराते हैं क्योंकि यदि ईमानदारी से निर्णय लेंगे तो, उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर, उन्हें हिंदुओं के पक्ष में ही निर्णय लेना पड़ेगा। अतः वे आसान रास्ता चुनते हैं - निर्णय ही न लो - कोई हमें बेईमान तो न कह सकेगा। पर उनकी ईसाई शिक्षा उन्हें यह नहीं सिखाती कि अपने कर्तव्य के प्रति बेईमानी भी एक प्रकार की बेईमानी ही हुआ करती है।

नगरपालिका के ख़राब हालत स्कूलों को न गिनें, तो आप देखेंगे कि आज अधिकतर हिंदू बच्चे ईसाई स्कूलों में जाते हैं, चाहे वे कैथोलिक ईसाई स्कूल हों या प्रोटेस्टेंट ईसाई स्कूल। क्या हम हिंदुओं के पास इतना भी धन नहीं कि हम सारे देश में, प्रत्येक स्थान पर, एक अच्छे हिंदू विद्यालय की स्थापना कर सकें जहाँ हमारे बच्चे हिंदू संस्कृति सीखें, हिंदू जीवन मूल्यों के साथ चल कर और पल कर बड़े हो सकें? क्या यह आवश्यक है कि हम अँग्रेज़ी के बिना जी नहीं सकते? एक वर्ष पहले मैं योरप (वेनिस) गया था। कोई बिरला ही मुझे मिलता जो अँग्रेज़ी बोलता। उन्हें परवाह तक नहीं कि वे अँग्रेज़ी नहीं बोल पाते। वे अपने इटैलियन होने पर गर्व महसूस करते हैं, उन्हे अँग्रेजों व अँग्रेजी से कोई प्रेम नहीं। जापान में जाइए, चीन में जाइए, उन्हें भी अँग्रेज़ी नहीं आती। वे हम से कुछ कम तो नहीं किसी माने में। जर्मनी, फ़्रांस में रहने वाले लोगों को अँग्रेज़ी बोलनी नहीं आती पर वे अँग्रेज़ों से कुछ कम तो नहीं। उन्हे कोई नीची दृष्टि से देखता तो नहीं। तो हम क्यों कायल हों अँग्रेजी के इतना? आपके बच्चे जब अपनी मातृभाषा में सोचेंगे तो उनका मानसिक विकास बेहतर होगा। पराई भाषा में सोचने की चेष्टा से मानसिक योग्यताएँ कुंद हो जाती हैं। पराई भाषा में सोचने से व्यक्ति पराई संस्कृति का दास हो जाता है। भाषा का प्रभाव होता है हमारे मस्तिष्क पर, भाषा हमारी सोच व भावनाओं को दिशा देती है, हमारी संस्कृति व हमारे जीवन मूल्यों को प्रभावित करती है।

मैकॉले जिसने नींव रखी थी भारतवर्ष में वर्तमान शिक्षा पद्धति की, उसने कहा था - 'हमें तैयार करनी है एक ऐसी फ़सल (हिंदुस्तानियों की), जो हो खून और चमड़ी से तो हिंदुस्तानी, पर हो अँग्रेज़ रुचि से, हो अँग्रेज़ सिद्धांतों से, हो अँग्रेज़ आचरण से, हो अँग्रेज़ विचारों से।' (संदर्भ - डॉ एन एस राजाराम, पृष्ठ १६९)। देखा जाय तो आज का अधिक अँग्रेज़ी पढ़ा हिंदू बन गया है वैसा ही, जैसा चाहा था मैकॉले ने। इसी लॉर्ड मैकाले ने, जो थे एक इतिहासज्ञ एवं राजनीतिज्ञ, उन्होने फ़ेब्रुअरी (फ़रवरी) १८३५ में, ब्रिटिश पार्लियामेंट

में अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा था - मैंने भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक की यात्रा की, पर मैंने एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो भिखारी था, या जो चोर था। इतना वैभव मैंने देखा है इस देश में, इतने ऊँचे नैतिक मूल्य, जन साधारण इतनी उच्च योग्यता व चरित्र के - कि मैं नहीं सोचता कि हम कभी इस देश को अपने अधीन बना पाएँगे - **जब तक कि हम इस राष्ट्र के मेरुदंड को न तोड़ दें, जिसका आधार है उनकी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ,** और इसके लिए मेरा प्रस्ताव है कि हम इस देश की प्राचीन शिक्षा पद्धति को, उनकी संस्कृति को बदल डालें - इस प्रकार कि, यदि भारतवासी यह सोचने लगें कि जो कुछ भी विदेशी है, और अँग्रेज़ी है, वह अच्छा है एवं उनके अपने से बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान और अपनी मूल संस्कृति को खो बैठेंगे - इस प्रकार वे बन जाएँगे, जो हम चाहते हैं, एक वास्तविक रूप से अधीन राष्ट्र! (संदर्भ - इंडियाकॉज़ सूचनापत्र १७ ऑगस्ट (अगस्त) २००३) (उद्धृत - एचटीटीपी//ड्ब्ल्युड्ब्ल्युड्ब्ल्यु.वेद.हरेकृष्ण.सीज़ेड/एनसाइक्लोपीडिआ/इन्डोलॉजी.एचटीएम ११) (प्रलेख ग्रंथ - द अवेकनिंग रे, ग्रंथ ४, संख्या ५, द नॉस्टिक सेंटर)।

यह भाषण आगे चलकर आधारशिला बन गया, उस समय के भारतीय शिक्षा पद्धति को समूल उखाड़ फेंकने की, एवं उसके स्थान पर ईसाई शिक्षा पद्धति को स्थापित करने की। यह एक षड़यंत्र था इस राष्ट्र के प्रति। ध्यान दीजिए, क्या था उनका अभिप्राय उस शिक्षा पद्धति को हम पर थोपने का - इस प्रकार कि यदि भारतवासी यह सोचने लगें कि जो कुछ भी विदेशी है, और अँग्रेज़ी है, वह अच्छा है एवं उनके अपने से बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान खो बैठेंगे। यही तो हुआ है हमारे साथ कि हम अपना आत्मसम्मान खो बैठे हैं पर हमारी मूर्खता देखिए कि आज भी हम इस ग़लतफ़हमी में ही जी रहे हैं कि जो कुछ भी विदेशी है, और अँग्रेज़ी है, वह अच्छा है एवं हमारे अपने से बेहतर है (इसीलिए न हम आज भी अपने बच्चों को उन स्कूलों में भेजते हैं जिनका नाम अँग्रेज़ी का होता है जैसे सेंट मेरी, सेंट ज़ेवियर, होली क्रॉस, इत्यादि)। इस ग़लतफ़हमी को पहचानिए, अपने आप को वृथा धोखे में न रखिए। इसका अज्ञान आपके लिए अभिशाप रहा है, इसे जानिए और इस स्थिति में अपने कर्तव्य को पहचानिए।

जब हमारे अपने नैतिक मूल्य इतने ऊँचे थे, जिनका विवरण लॉर्ड मैकाले

ने दिया है, तो क्या आज हमें नैतिक मूल्य पश्चिम से नक़ल करने होंगे? हम यदि आज इन पश्चिम के हिमायतियों को निकाल फेंके और अपने प्राचीन जीवन मूल्यों की ओर लौटें तो न केवल हम अपना ही उद्धार कर सकते हैं, अपितु हम पश्चिम को भी दिशा दे सकते हैं। इसके लिए आवश्यकता है आज राष्ट्रीय भावना की, अपने अतीत के प्रति एवं अपनी परंपराओं के प्रति दृढ़ विश्वास की और उन्हें पुनः पाने की सतत चेष्टा की।

हमारे आज के दिग्दर्शक, हमें कहते हैं कि, अपने बीते हुए गौरव को भूलकर, हमें अपने इस वर्तमान को सुधारने की चेष्टा करनी चाहिए। क्या वे चाहते हैं कि हम अपने वर्तमान को सुधारें उनकी तरह झूठा व बेईमान बनकर, जिसकी केवल कुछ ही झलकियाँ आपने देखीं इस पुस्तक में? आगे की पुस्तकों में देखिए इनकी बेईमानी का नंगा नाच। इनके साथ बड़े-बड़े नाम जुड़े होते हैं और उस नाम की आड़ में छुपी होती है उनकी बेईमानी, हिंदू समाज के विरुद्ध षड़यंत्र की कहानी। ये राजनीतिज्ञों को बदनाम करते रहते हैं (जो पहले से ही बड़े बदनाम हैं) और इस प्रकार जनता की नज़र अपने कारनामों पर पड़ने नहीं देते। आज का वह हिंदू जो अपने ऐतिह्य को न जानेगा, अपनी जड़ को न पहचानेगा, वह इनकी तरह ही बनेगा!

हमारे आज के ये दिग्दर्शक मूर्ख नहीं हैं, बल्कि नंबरी धूर्त हैं। वे जानते हैं कि यदि हम अपने गौरवशाली अतीत को जानेंगे, तो हम उसे पुनः प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे, और इस चेष्टा में ये धूर्त दिग्दर्शक अपनी वर्तमान महत्ता खो बैठेंगे। आज हम भारतीयों में राष्ट्रीय भावना की इतनी कमी है। कोई अँग्रेज़ी का समाचार पत्र उठा कर देख लीजिए। कोई समाचार न मिलेगा जिसमें गर्व झलकता हो हमारी राष्ट्रीय उपलब्धियों के प्रति। केवल बुराइयाँ ही पढ़ने को मिलती हैं। क्यों होता है ऐसा? और हम आशा भी क्या कर सकते हैं जो ये ईसाई और कॉम्युनिस्ट-मार्क्सिस्ट सिखाएँगे हमारे बच्चों को? ये समाचार पत्रों के संवाददाता एवं संपादक भी तो वहीं की पैदावार हैं। हमारे न्यायाधीश भी इसी शिक्षा पद्धति की देन हैं। डॉ आनंद कुमारस्वामी कहते हैं - एक पीढ़ी अँग्रेज़ी शिक्षा की काफ़ी है, हमें अपने संस्कारों से तोड़ कर, एक ऐसे व्यक्तित्व को जन्म देने की, जो एक बुद्धिजीवी चांडाल की तरह होता है, जिसकी अपनी कोई पहचान नहीं होती, और जो न तो पूर्व का होता है, न पश्चिम का, न अतीत का न भविष्य का! हमारे देश की समस्त समस्याओं में से शिक्षा की समस्या सबसे

कठिन व सबसे दुःखद है (संदर्भ - डॉ एन एस राजाराम, पृष्ठ १८८, उद्धृत - डॉ आनन्द कूमारस्वामी)। क्या हम हिन्दुओं के पास इतना भी धन नही रह गया कि हम हिंदू संस्कृति एवं हिंदू जीवन मूल्यों के आधार पर विद्यालयों की एक ऐसी शृंखला सारे भारतवर्ष मे जाल की तरह बिछा सकें जिससे हिन्दू बच्चों को ईसाई स्कूलों में पढ़ने के लिए जाना न पड़े? सोच कर देखिए।

हम हिंदुओं को मंदिर बनाने पर खर्च करना चाहिए क्योंकि ये मंदिर हमारी आत्मा को शांति देते हैं। पर हमें हिंदू विद्यालयों एवं हिंदू विश्वविद्यालयों की स्थापना पर भी धन खर्च करना चाहिए क्योंकि ये हमारे बच्चों के सोच की रक्षा करेंगे। हमारे बच्चे हिंदू संस्कृति व हिंदू जीवन मूल्यों से बहुत दूर चले जा रहे हैं। उनकी सोच, उनकी भावनाएँ अनुचित दिशाओं में चली जा रही हैं। शिक्षा पद्धति एवं जीवन मूल्यों के प्रति समर्पण जो हमारे आंतरिक चरित्र को बनाती हैं उनकी ओर ध्यान देना बहुत ही आवश्यक है!

क्रांति की आवश्यकता देश में नहीं, हमारी सोच में है।
पर हमारी सोच बदले कैसे, जब सच्चाई का हमें भान नहीं।
मत भूलिए कि ज्ञान आपकी शक्ति है,
और अज्ञान रहा है अभिशाप आपके लिए।

अध्याय-८ कहाँ गई उन धर्मनिरपेक्षता के ठेकेदारों की आवाज़ जब सऊदियों ने मस्जिद मदरसा तोड़ा, जब पाकिस्तान सरकार ने मस्जिद तोड़ा, जब चीन की सरकार ने मस्जिद तोड़ा, जब इज़रायल सरकार ने मस्जिद तोड़ा, जब बर्मा के बौद्धों ने ढेरों मस्जिद मदरसे तोड़े

हिंदुओं ने तो केवल एक मस्जिद के नाम का ढाँचा गिराया था, वह भी वर्षों के अन्याय को चुपचाप सहते रहने के बाद - अन्याय जो यवनों ने किया, अन्याय जो राष्ट्र की स्वतंत्रता के पश्चात धर्मनिरपेक्षता की आड़ में हमारे अपनों ने किया, अन्याय जो हमारी न्यायालयों ने किया अपनी अकर्मण्यता के कारण। वह भी एक नाममात्र के मस्जिद के लिए जहाँ पिछले ५७ वर्षों से न तो नमाज़ पढ़ी गई न उसका मस्जिद के रूप में प्रयोग किया गया, अपितु ४४ वर्षों से वह इमारत हिंदू मंदिर के रूप में प्रयोग में लाई जाती रही और उस ढाँचे को एक

हिंदू मंदिर का उचित स्वरूप देने के लिए गिराया गया। यह तो दस वर्ष पुरानी बात है, अब तुलना कीजिए इन तथ्यों की, निम्न लिखित सच्चाइयों से, जो हाल ही की हैं।

दो वर्ष ही बीते हैं। १२ दिसंबर २००१ की ही बात है। कोसोवा की शिया न्यूज़ ने सूचना दी कि सउदी वहाबी कर्मियों ने बुल्डोज़र लाकर ज़ाकोविका के मस्जिद व क़ुरान स्कूल को ढहा दिया (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। हमारे राम भक्तों ने तो जोश में आकर, सदियों के अन्याय का विरोध करते हुए, एक ढाँचे को गिराया जो मुस्लिमों के इबादत की जगह न रही थी, बल्कि हिंदुओं के पूजा का स्थान बन चुकी थी। पर यहाँ तो विश्व के सबसे कट्टर मुसलमानों ने, स्वयं बुल्डोज़र लाकर, सोची समझी योजना के अनुसार, एक वास्तविक मस्जिद एवं मदरसे को तोड़ा!

केवल डेढ़ वर्ष ही बीता है, जून २००२ की बात है। दक्षिण-पूर्व एशिया के स्वाधीन सुलु की राजधानी जोलो के मुख्य मस्जिद को ढहा देने की आज्ञा दी वहाँ के राज्यपाल नूर मिसौरी ने। यह मस्जिद उस द्वीप-प्रदेश का ऐतिहासिक चिह्न हुआ करता था जहाँ अतीत एवं वर्तमान के सभी परंपरागत नेता एवं नए सरकारी अधिकारी अपने धार्मिक संगठन का कार्य प्रारंभ किया करते थे (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। यहाँ हम देखते हैं कि एक प्रमुख मुसलमान अधिकारी एक बहुत ही महत्वपूर्ण मस्जिद को तोड़ने से न झिझका। तो फिर इतनी चिल्ल-पों क्यों? हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने इसे 'राष्ट्रीय लज्जा' की बात कहकर हिंदुओं को इतनी फटकार दी, पर न्याय न दिया, और ३,००० घंटे सोचने के बाद निर्णय न लिया - अपने वचन तक से मुक़र गए। अब कहाँ गई उनके अंतःकरण की आवाज़? क्या केवल हम हिंदुओं ने ठेका ले रखा है सब बलिदान करने का? ये न्यायाधीश जो हमें सीख देते हैं, उनके अपने आचरणों की झलक तो देखी ही है, आपने इस पुस्तक में।

कुछ ही महीनों की बात है, इसी जनवरी में पाकिस्तान के समाचार पत्र द डॉन ने लिखा कि सरकारी अधिकारियों ने एक बनते हुए मस्जिद को तुड़वा दिया क्योंकि वह स्थान एक उपवन के लिए रखा गया था (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान में एक उपवन, एक मस्जिद से अधिक महत्व का हो सकता है, पर हम हिंदुओं के राष्ट्र में वह ढाँचा, जो ५७ वर्षों से मस्जिद न रहा, हमारे श्री राम के जन्मस्थान से अधिक महत्व का हो गया! यह

सोच है हमारे आदरणीय(?) न्यायाधीशों की।

हमें संविधान न दिखाइए कि उसके अनुसार हम धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र हैं। वह संविधान जो इन्हीं हिंदू विरोधी लोगों ने लिखा, क्योंकि वे चाहते थे इस सनातन सत्य को झुठलाने की, कि जब तक मानव समाज की याददाश्त जाती है तब से यह भारत देश रहा है हिंदू राष्ट्र। कुछ अँग्रेज़ी पढ़े लिखे मैकाले-पुत्रों और मुस्लिम-ईसाई वोट के लोभी राजनीतिज्ञों की इच्छा से यह कुछ और नहीं बन जाएगा। यह रहेगा हिंदू राष्ट्र ही। चाहे आपको शर्म आती हो यह कहने में, मुझे नहीं आती कि मैं हिंदू हूँ और यह मेरा देश है। हिंदू राष्ट्र जिसने पनाह दी मुसलमानों को, ईसाइयों को, और उन्हींने आगे चलकर छुरा भोंका हम हिंदुओं की पीठ पर, और इतिहास भी गवाह है इसका।

औरंगज़ेब जिसने हिंदू मंदिरों को तुड़वाने का प्रण ले रखा था, जिसके कारण १८वीं सदी में सूरत से लेकर दिल्ली तक एक भी हिंदू मंदिर न बचा था, उसी औरंगज़ेब ने स्वयं गोलकुंडा के जामा मस्जिद को तुड़वा दिया। वहाँ का जागीरदार कर इकट्ठा करता रहा पर उसने उसे औरंगज़ेब के राजकोष में नहीं जमा कराया। उसने धन को ज़मीन में गाड़ दिया और उसके ऊपर एक आलीशान मस्जिद बनवा दिया। धन वसूल करने के लिए औरंगज़ेब ने जामा मस्जिद को तुड़वा दिया (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। जामा-मस्जिद का अर्थ है नगर की सबसे बड़ी एवं पुरानी मस्जिद जहाँ नमाज़ पढ़ी जाती है (संदर्भ - डॉ हरदेव बाहरी, पृष्ठ ३००)। यहाँ हम देखते हैं कि धन जामा-मस्जिद से अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है औरंगज़ेब जैसे कट्टर मुसलमान के लिए, पर एक ढाँचा जो ५७ वर्षों से मस्जिद न रहा था, वह श्री राम के जन्मस्थान से अधिक महत्वपूर्ण हो गया, इन न्यायाधीशों के एवं इन राजनीतिज्ञों के लिए! यह तो है उनका विवेक एवं उनका नीति ज्ञान - इस ईसाई शिक्षा पद्धति की सीख!

इब्न सउद ने मदीना का प्रसिद्ध मस्जिद तोड़ा - १९२० में वहाबी शासन के इब्न सउद ने मदीना का प्रसिद्ध ज़नत उल बाक़ी मस्जिद को तुड़वा दिया (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। ये आज के न्यायाधीश कहेंगे, चाहे उन्होने ने सदियों पहले गलती की हो, हम तो उसे नहीं दोहरा सकते, पर वे नहीं झिझकेंगे नई ग़लतियाँ स्वयं करने से, जो आज वे कर रहे हैं, हिंदू समुदाय के प्रति, अपने सतत अन्याय से।

चीन की सरकार ने मस्जिद तोड़ा - दो वर्ष ही बीते हैं। ९ ऑक्टोबर २००१, चीनी सरकार के काराकाश ज़िले के अधिकारियों ने डोएंग मस्जिद तुड़वा दिया क्योंकि वहाँ के मुसलमान तुर्किस्तान की माँग करने लगे थे (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। मुसलमान जहाँ भी रहते हैं उसे दार अल-इस्लाम (मुसलमानों का वतन) बनाने की उधेड़ बुन में लगे रहते हैं। आज कश्मीर व केरल में यही हो रहा है। धीरे-धीरे वे हिंदुओं को काट कर फ़ेंके दे रहे हैं। चीन में भी उन्होनें वही चेष्टा की।

गुजरात में मुसलमानों को रहने व उनकी इबादत (पूजा) के लिए सिद्धराजा जयसिम्ह व उसके उत्तराधिकारी संरक्षण देते रहे। गुजरात के अनेकों नगरों में, मुसलमानों की संख्या और उनकी मस्जिदें बढ़तीं रहीं, जिसके साक्षी हैं अनगिनत शिलालेख, ख़ासकर खम्बाट, जूनागढ़ और प्रभासपतन, जिन पर तारीख़ें खुदीं हैं १२९९ ईस्वी के पहले की, जबकि गुजरात मुसलमानों के आधिपत्य में आया १२९९ ईस्वी के पश्चात, उलुघ ख़ान के आक्रमण के बाद। ऐसा लगता है कि दुकानदार, व्यापारी, नाविक और इस्लाम के धर्मप्रचारक संतुष्ट नहीं थे उससे, जो संरक्षण मिलता रहा उन्हें, हिंदू राजाओं के शासन-काल में। वे प्रतीक्षा करते रहे उस दिन की जब यह दार अल-हर्ब बन जाएगा दार अल-इस्लाम। दार अल-हर्ब है काफ़िरों का वह राष्ट्र जिसके ख़िलाफ़ हर मुसलमान लड़ने को बाध्य है (कुरान और हदिस के अनुसार)। 'दार अल-इस्लाम' है मुसलमानों का अपना वतन। संदर्भ - श्री सीता राम गोयल, पृष्ठ ३५-३६

पर चीनी उनसे ज़्यादा उस्ताद थे, हम हिंदुओं की तरह भले मानुष नहीं। हम भूल जाते हैं कि भला होना ही पर्याप्त नहीं, भले होने के पीछे ठोस कारण होना चाहिए। आवश्यकता से अधिक भले बनने की चाहत में हम अपना ही बुरा करते हैं। ऐसा वे क्यों करते हैं यह जानना चाहें तो हमारी आगे की पुस्तकें पढ़िए जिनमें हम आपको बताएँगे कि क़ुरान व हदीस मुसलमानों को क्या सिखाते हैं। भूल जाइए वह बकवास कि मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना। यह सत्य है हिंदुत्व के लिए, पर पूर्णतः असत्य है इस्लाम व ईसाईयत के लिए। उनके लिए सही कथन होगा मज़हब ही सिखाता है आपस में बैर करना। हालाँकि ईसाईयत में एक फ़र्क़ है, वह साथ ही साथ यह भी सिखाता है कि, करो कुछ और कहो कुछ और दिखाओ कुछ! बाईबल की सच्चाई बड़ी

ढकी-छुपी सच्चाई है। हमारे अदालत हमें इन बातों का पर्दाफाश करने की इजाज़त नहीं देते थे कुछ वर्षों पहले तक, जब चाँद मल चोपड़ा जी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी। पर आज समय बदल रहा है। हिंदू इतना लाचार तो आज नहीं, चाहे बँटा हुआ क्यों न हो! इसकी पूरी कहानी हम आपको बताएँगे आने वाली पुस्तकों के द्वारा, यदि आप जानना चाहेंगे तो। तब तक सोचिए, ऐसा क्यों कि सदियाँ गुज़र गई, पर वे बदले नहीं? कब तक आप अपने आप को धोखा देते रहेंगे, कि शायद वे बदल जाएँ? इतनी भलमनसाहत तो अच्छी नहीं, कि अपने पाँवों पर कुल्हाड़ी मार कर, दूसरों को अपने कंधों पर बिठाएँ!

बर्मा के बौद्धों ने ढेरों मस्जिद मदरसे तोड़े - बौद्धों ने बर्मा में ढेरों मस्जिद तोड़े। क्याइक्डोन - मस्जिद के अंदर का भाग व मुस्लिम स्कूल तोड़ा, मुसलमानों को निकाल दिया, यदि उन्होने बौद्ध धर्म स्वीकार न किया। गॉ बे - मस्जिद तोड़ा। नॉ बू - मस्जिद तोड़ा और सारे गाँव वालों को निकाल दिया। डे न्गा इन - मस्जिद तोड़ा। क्याउंग डॉन - मस्जिद तोड़ा पर गाँव वालों को रहने दिया। कनिन्बू - मस्जिद व मुस्लिम स्कूल तोड़ा (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। कहते हैं बौद्ध धर्म बड़े शांति और अहिंसा का धर्म है!

इज़राएल सरकार ने नाज़ारेथ में मस्जिद की नींव तुड़वा दी कारण यह मस्जिद ईसाइयों के धार्मिक स्थान के बहुत पास था जिससे ईसाइयों और मुसलमानों में तनाव बढ़ता जा रहा था (संदर्भ - विशाल शर्मा, पृष्ठ ५)। क्या अंतर है अयोध्या और नाज़ारेथ में? ईसाई पोप नाज़ारेथ के पक्ष में और अयोध्या के विपक्ष में बोलते हैं। क्या न्याय ईसाई के लिए अलग और हिंदू के लिए अलग? यह कैसे धर्म गुरु हैं? बिना न्याय के आधार का धर्म?

जब बाबरी ढाँचा गिरा तब से १० वर्ष बीत चुके हैं। उसके बाद भी विश्व के अन्य स्थानों पर कितने ही वास्तविक मस्जिद तोड़े गए। आज २५ जुलाई २००३ के समाचार पत्र (संदर्भ - द फ़्री प्रेस जर्नल, मुंबई संस्करण, प्रथम पृष्ठ) बताते हैं, कि हमारी सोनिया गांधी कहती हैं, कि जब तक बाबरी मस्जिद तोड़ने वालों को दंड नहीं मिल जाता तब तक हम चैन से नहीं बैठेंगे और हमारा युद्ध चलता ही रहेगा। अर्थात वे चाहती हैं कि लोग न भूल पाएँ इस झगड़े को। वे चाहती हैं कि लोग लड़ते रहें इस बात पर। वे हवा देना चाहती हैं इस समस्या को - वे हवा देना चाहती हैं इस समस्या को, जो दस वर्ष पहले

बीत चुका है। उन्हें क्या मिलेगा इससे? मुसलमानों के वोट। वे बता रहीं हैं मुसलमानों को कि हम हैं तुम्हारे एकमात्र हमदर्द। चाहे सउदी अरब के मुसलमान तोड़ दें मस्जिद, चाहे पाकिस्तान, चीन, इज़राएल की सरकारें तोड़ें मस्जिद और कोई कुछ न कहे, पर हम हैं तुम्हारे साथ। हमारा सहारा लो, दस वर्ष पुरानी बात न भूलो, बस लड़ते रहो और हमें हमदर्द मान, अपना वोट देते रहो। इन्हें हम जनभक्त कहें या जनद्रोही? जनता ही बताए।

जब अधर्म का हो बोलबाला,
और धर्म का दम घुटता हो,
तो उठती है एक आवाज़...

हमें तो तलाश है उनकी,
जिनके दिन या रात चाहे सड़क पर बीतते हों
या खेतों में मज़दूरी कर,
पर आज भी जलती जिनके हृदय में मशाल है।
जो हिंदू अपने को जानते हैं,
जो हिंदू अपने को मानते हैं,
और जिनकी साँस में बसती है हिंदुत्व की धारा।
जिनका ख़ून हिंदू है, जिनका ईमान हिंदू है,
जिनकी सोच हिंदू है!

क्यों हिंदू जिए सर झुकाकर
अब समय आ गया है
हम जिएँ सर उठाकर

हिन्दू को एक जुट होना पड़ेगा
हिन्दू जब तक बिखरा रहेगा
कोई उसकी परवाह न करेगा

हाँ, आज मैंने शस्त्र उठाया है

कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में
भीष्म का भीषण तांडव देखा, तो न रहा गया कृष्ण से।
भूले नहीं, पर भुलाया उन्होनें, अपना वचन,
कि मैं न उठाऊँगा शस्त्र, इस युद्ध में।
उठा लिया उन्होनें, रथ का पहिया, और दौड़ पड़े, भीष्म पर वार करने।
भीष्म लड़ रहे थे दुर्योधन के पक्ष में, चाहे बँधे हो अपने प्रण से,
पर दे रहे थे साथ आज अधर्म का।

भीष्म का विनय
अपना धनुष छोड़ा, हाथ जोड़े, मुस्कराए और भीष्म बोले,
अहोभाग्य मेरे जो भगवन आए, शस्त्र उठाए, वार करने मुझ पर।
पर तुमने तो कहा था भगवन!
शस्त्र न उठाऊँगा, इस युद्धभूमि में,
पर आज मैंने, विवश कर दिया प्रभु तुम्हें, प्रण तोड़ने अपना!

श्री कृष्ण बोले
तोड़ता हूँ अब मैं, सब अपने वचन,
शस्त्र सन्यास के सब उपकरण,
धर्म रक्षा, राष्ट्र रक्षा के लिए,
कर रहा हूँ फिर मैं, आयुध ग्रहण।
(केवल, श्री कृष्ण के ये बोल, मेरे लिखे हुए नहीं हैं)

आएगा वह दिन,
जब श्री नारायण स्वयं आएँगे अवतार लेकर,
पर तब तक,
आपको हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहना है।
आपका पुरुषार्थ आज आपसे आपका कर्म माँगता है।
धरती माँ का इतना तो ऋण बनता है आप पर!

लॉर्ड मैकॉले ने, जो थे एक इतिहासज्ञ एवं राजनीतिज्ञ, उन्होने फ़ेब्रुअरी (फ़रवरी) **१८३५** में, ब्रिटिश पार्लियामेंट में अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा था - मैंने भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक की यात्रा की, पर मैंने एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो भिखारी था, या जो चोर था। इतना वैभव मैंने देखा है इस देश में, इतने ऊँचे नैतिक मूल्य, जन साधारण इतनी उच्च योग्यता व चरित्र के - कि मैं नहीं सोचता कि हम कभी इस देश को अपने अधीन बना पाएँगे - **जब तक कि हम इस राष्ट्र के मेरुदंड को न तोड़ दें,** जिसका आधार है उनकी आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ, और इसके लिए मेरा प्रस्ताव है कि हम इस देश की प्राचीन शिक्षा पद्धति को, उनकी संस्कृति को बदल डालें - इस प्रकार कि, यदि भारतवासी यह सोचने लगें कि जो कुछ भी विदेशी है, और अँग्रेज़ी है, वह अच्छा है एवं उनके अपने से बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान और अपनी मूल संस्कृति को खो बैठेंगे - इस प्रकार वे बन जाएँगे, जो हम चाहते हैं, एक वास्तविक रूप से अधीन राष्ट्र! (संदर्भ - इंडियाकॉज़ सूचनापत्र १७ ऑगस्ट (अगस्त) २००३) (उद्धृत - एचटीटीपी//ड्ब्ल्युड्ब्ल्युड्ब्ल्यु.वेद.हरेकृष्ण.सीज़ेड/एनसाइक्लोपीडिआ/इन्डोलॉजी.एचटीएम ११) (प्रलेख ग्रंथ - द अवेकनिंग रे, ग्रंथ ४, संख्या ५, द नॉस्टिक सेंटर)।

सोच कर देखिए। केवल १७० वर्ष पहले की बात है। भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक एक भी भिखारी न दिखाई दिया, एक भी चोर न दिखाई दिया। और आज स्थिति क्या है? क्या १७० वर्ष बहुत अधिक होते हैं? यह सब कैसे हुआ? उन्हीं की ज़बानी आपने सुनी, उनकी अपनी षड़यंत्र की कहानी। इस परिवर्तन का माध्यम क्या था? हिंदू शिक्षा पद्धति का उन्मूलन और अँग्रेज़ी-ईसाई शिक्षा पद्धति की स्थापना। क्या आपको स्पष्ट नहीं दिखता कि आपकी समस्या की जड़ कहाँ है? उस जड़ को, उस वृक्ष को आप बड़े प्रेम और आदर से सींचते जा रहे हैं! आप यदि वही समृद्धि चाहते हैं जो आपकी थी केवल १७० वर्ष पहले, तो आपको लौट जाना पड़ेगा अपनी उस हिंदू संस्कृति की ओर, उस हिंदू शिक्षा पद्धति की ओर, जिसका समूल उन्मूलन कर दिया मैकॉले की अँग्रेज़ी-ईसाई शिक्षा पद्धति ने! यदि केवल १७० वर्षों में उसका उन्मूलन संभव था, तो उसकी पुनः स्थापना भी संभव है।

हिंदू के भीतर जो शांति है उससे वह समझता है कि बाहर चारों तरफ़ भी शांति है। वह आँखें मूँदे रहना चाहता है तब तक, जब तक कि अशांति उसके

अपने द्वार पर आकर, उसके अपने परिवार को न झँझोड़े! आप अँग्रेज़ी अवश्य पढ़ें ताकि उनकी सच्चाई को जानें, न कि उनके झूठ को सच्चाई मान कर उसका अनुसरण करने में गौरव बोध करें। सात पीढ़ियाँ गुज़र चुकी हैं और आपको उस षड़यंत्र का ज्ञान नहीं जिसके शिकार आप बनें! गांधी-नेहरू भी थे उसी ईसाई पद्धति की पैदावार। उन्होनें हिंदू से अपनी रक्षा का आखिरी हथियार भी छीन लिया। ये सारी बातें आपको बड़ी अटपटी लगती होंगी, पर क्या आपने कभी सोचा था कि आपके मेरुदंड को कैसे तोड़ दिया गया? मिश्राजी ने मुझसे कहा, पुस्तक तो आपने बहुत सुंदर लिखी है, पर हिंदू धर्म कभी इतना कट्टर पंथी नहीं था, आपने इसे बहुत स्ट्रॉन्ग कर दिया। मेरे मन में यह भाव उभरा कि जब एक व्यक्ति नशे में धुत्त पड़ा हो तो उसे झंझोड़ कर ही जगाना होता है। आज हिंदू समाज भी उसी नशे की स्थिति में है और यदि उसे झंझोड़ा न गया तो वह जागेगा नहीं। इतनी निष्क्रियता आ गई है उसमें, इतना उदासीन हो गया है वह कि धर्म की रक्षा के उत्तरदायित्व के प्रति घोर उपेक्षा भाव आ गया है उसमें। और उसका दुर्भाग्य देखो कि वह नहीं समझता कि यह प्रभाव है उस अँग्रेज़ी-ईसाई शिक्षा पद्धति के प्रभाव का, जो थोपी गई थी उस पर सात पीढ़ियों पहले, एक षड़यंत्र के द्वारा!

मुझे बार-बार इस बात की अनुभूति होती रही है कि आज हिंदू कलह नहीं चाहता, कोई संघर्ष नहीं चाहता, चाहे वह संघर्ष असत्य, अन्याय रूपी अधर्म के विरुद्ध ही क्यों न हो। हिन्दू आज क्षात्र-धर्म (क्षत्रिय का धर्म) भूल चुका है। इसका कारण है हमारे देश में पिछली सात पीढ़ियों से व्याप्त ईसाई शिक्षा व्यवस्था, एवं पिछली दो पीढ़ियों से कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट सोच का प्रभाव। नाम से तो अनेक व्यक्ति हिंदू जैसे जान पड़ते हैं, पर सोच से वे हिंदू नहीं। उदाहरण के लिए ढेर सारे कॉम्युनिस्ट-मार्क्ससिस्ट। इसके अलावा, नाम से तो अनेक व्यक्ति हिंदू जान पड़ते हैं जबकि उन्होनें कोई दूसरा ही धर्म अंगीकार कर लिया है, पर जनसमुदाय को यह बात खुलकर बताते नहीं अपने निहित स्वार्थों के लिए। उदाहरण के लिए अजित जोगी, जो नाम से तो हिन्दू योगी जैसे जान पड़ते हैं, पर हैं वास्तव में ईसाई! ऐसे अहिंदुओं को पहचानना बहुत आवश्यक है, क्योंकि ये हमें धोखा देते हैं हिंदू नाम एवं पहचान के सहारे।

आप अपने आप से पूछें, भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में ही क्यों दिया, वन के किसी आश्रम में क्यों नहीं? याद कीजिए, भूल गए हैं संभवतः, गीता के इन निर्देशों को और फिर पूछिए अपने

आप से - क्या ये कुछ कह रहे हैं आप से? श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३ हे पृथा के पुत्र अर्जुन, तुझे नामर्द नहीं बनना है। ऐसा तेरे लिए कतई योग्य नहीं है। हे परंतप, हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता का त्याग करके अब तू युद्ध के लिए तैयार हो जा। श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ३८ सुख दुख, लाभ हानि तथा जय पराजय को एक समान समझ कर युद्ध में लग जा। ऐसा करने से तुझे पाप भी नहीं लगेगा। आपका का प्रथम युद्ध क्या है और किससे है? आपका का प्रथम युद्ध अपने आप से है, अपनी सोच से है, अपनी समझ से है, अपनी सुषुप्त अथवा जागृत अवस्था से है; अपने धर्म एवं अपने कर्तव्य के प्रति आपकी अपनी आस्था से है। पहले इन सबसे तो जूझिए, फिर सोचिएगा आपका युद्ध किससे है?

आज का अर्जुन वह प्रत्येक व्यक्ति है, स्त्री या पुरुष, जो अपने कर्तव्य को पहचानता है। वह कर्तव्य जो धर्म की रक्षा व अधर्म का नाश करने की प्रेरणा देता है। आज अधर्म वह असत्य और अन्याय है जिसकी छवि आप देखेंगे इस पुस्तक के ८ अध्यायों में। आज अधर्मी वह प्रत्येक व्यक्ति है जो उस असत्य और अन्याय का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध नहीं कर रहा है। आप इस पुस्तक से क्या आशा कर सकते हैं? इस पुस्तक में आपको बहुत कुछ नया मिलेगा, नई सच्चाइयाँ, नई परिदृष्टि और कुछ ऐसे तथ्य जो आपको एक नए ढंग से सोचने पर बाध्य कर सकते हैं। यह पुस्तक मूलतः उन ऐतिहासिक सत्यों पर आधारित है जिन्हें साधारण जनता की नज़रों से ओझल रखने की भरपूर कोशिश की गई थी। इस पुस्तक में आपको उन सत्यों के पूर्ण संदर्भ भी मिलेंगे, ताकि यदि आप उनकी स्वयं पुष्टि करना चाहें तो कर सकेंगे। सच्चाइयों को आप तक पहुँचाना है हमारा कर्तव्य उनका प्रयोग करना है आपका कर्तव्य। आप मंदिरों में दान करते हैं, यह बहुत ही अच्छी बात है। ज्ञान दान करने की भी सोचें। इन सच्चाइयों को जन-जन तक पहुँचाने में योगदान करें। शुभारंभ अपने घर से करें। परिवार के सभी सदस्यों को इसे पढ़ने को दें। विशेषकर युवा वर्ग को, क्योंकि आज यह वर्ग हिंदू संस्कृति से बहुत दूर चला जा रहा है। अपने मित्रों, संबंधियों, छात्रों, सहकर्मियों को उपहार स्वरूप दें। सत्य आज जर्जर हो चुका है। आज उसे आपके सहारे की अत्यंत आवश्यकता है!

जब तक आप में सत्य को पहचानने की इच्छा, उसे स्वीकार करने की मानसिक तत्परता एवं उसके पक्ष में खड़े होने की दृढ़ता न आएगी, तब तक

बहुत कुछ न बदल सकेगा। मत भूलिए कि ज्ञान है आपकी शक्ति, और अज्ञान बना है अभिशाप आपका। यदि उस असत्य ज्ञान के सहारे जीते रहोगे, जो आज तक तुम्हें पढ़ाया गया है, तो अन्याय तुम्हें अन्याय न दिखेगा, और सत्य एवं न्याय के पक्ष में खड़े होने की प्रेरणा तुममें कभी न जगेगी। मेरा शस्त्र है यह कलम जो पुकारता तुम्हें कि जागो मेरे हिन्दू राष्ट्र! यह पुकार है हिन्दू गृहस्थ के लिए, यह पुकार है हिन्दू साधु के लिए, यह पुकार है हिन्दू सन्यासी के लिए, यह पुकार है प्रत्येक हिन्दू के लिए। हिंदू सन्यासी समझता है कि सन्यास लेकर वह हिंदू समाज के बन्धनों से मुक्त हो गया, अतः उसे इस संघर्ष से कोई सरोकार नहीं, वह तो व्यस्त है भगवद् चिंतन में! पर जीता वह हिंदू के दान पर ही! क्या उसका कोई दायित्व नहीं उस समाज के प्रति? क्यों न वह मुसलमान के दान पर जिए, क्यों न वह ईसाई के दान पर जिए, यदि वह सन्यासी समझता है अपने को सब धर्मों से ऊपर! कवित्व की आवश्यकता है हमारी ललकार में। वह कवि ही होता था, जो सेना में उत्साह का संचार करता था। क्योंकि युद्ध हमारे लिए, शौर्य का प्रदर्शन हुआ करता था। युद्ध के मैदान में हम उतरते थे, अपनी आन के लिए। आज वह समय फिर आ गया है। अंतर केवल इतना है कि अभी भी आवश्यकता नहीं कि हम वो शस्त्र उठाएँ जो संहारक होती हैं। आज यदि आवश्यकता है तो उठ कर खड़े होने की, ललकारने की उन्हें, जिन्होने दुरुपयोग किया है आपके मान का, आपके सम्मान का, आपकी भद्रता का, आपकी सहिष्णुता का। यदि आप राजनीति से घृणा करते हैं क्योंकि राजनीति कीचड़ है, तो किसी को तो उस कीचड़ में अपनी धोती उठाकर उतरना ही होगा उसे साफ़ करने के लिए, क्योंकि अधिकांशतः व्यक्ति जो राजनीति के अखाड़े में उतरते हैं, वे उसी कीचड़ के ही अंग बन कर रह जाते हैं। यह मत भूलिए कि राजनीति के क्षेत्र में जो कुछ भी होता है, वह इस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित अवश्य ही करता है, यद्यपि आप बहुधा इस बात को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव नहीं कर पाते।

मैं, एक सोया हुआ प्राणी, कैसे जागा? मैं सुनाता हूँ आपको मेरे अपने जीवन की कहानी। संभव है कि आप इस कहानी में अपने जीवन की प्रतिच्छवि भी देखें। यदि ऐसा हो तो समझें कि जो मेरे जीवन में संभव हुआ है, वह आपके जीवन में भी घट सकता है। जीवन का पहला अध्याय! आप ही की तरह मैं एक

साधारण हिंदू हुआ करता था - वह हिंदू जो तटस्थ रहना ही पसंद करता है। पिछले तीस वर्षों से न तो राजनीति में मुझे कोई दिलचस्पी रही है, न राजनीतिक सोच में। राजनीति के बारे में कोई चर्चा होती तो मैं चुप रहना ही पसंद करता, एक कान से सुनता, दूसरे से निकाल देता। टाइम्स ऑफ़ इंडिया जैसा धर्मनिरपेक्ष माना जाने वाला समाचार पत्र पढ़ता। अपने काम से काम रखता और बेकार सी लगने वाली बातों से दूर रहता। हमारे देश में होने वाली सारी बुराइयों की जड़ राजनीतिज्ञों को मानता। अपने चारों तरफ़ होने वाले अनाचारों को अनदेखा करते रहना ही पसंद करता, क्योंकि भाग्यवश इन अनाचारों ने मुझे व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं किया। आज अधिकांशतः हिंदू तटस्थ रहना ही पसंद करते हैं क्योंकि जो कुछ उनके चारों तरफ़ हो रहा है वह उन्हें व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं करता। सच तो यह है कि मैं अच्छी तरह से जानता तक नहीं था कि मेरे चारों तरफ़ वास्तव में क्या हो रहा है, और यही स्थिति आज अधिकांशतः हिंदुओं की है। कारण, समाचार पत्र हमें समाचार तो देते हैं पर पूर्ण सत्य कभी नहीं देते। यह बात आप पूरी तरह तभी समझेंगे जब आप मेरी पुस्तकों को पूरी तरह पढ़ेंगे। मैं एक उस शहरी की तरह था जो आज की आधुनिक जीवन प्रणाली से जूझता, अपने जीवन स्तर को बेहतर बनाने की लगातार कोशिश में जुटा था। उन सभी की तरह मेरा ध्यान केवल अपने निकटतम परिवार की सुख सुविधाओं पर ही केंद्रित था। एक बड़े शहर के हर साधारण शहरी की तरह, मेरे जीवन का उद्देश्य भी एक अच्छे फ़्लैट, एक गाड़ी, बच्चों की शिक्षा इत्यादि के इर्द-गिर्द ही घूमा करता था। एक आधुनिक व्यक्ति की तरह स्व-केंद्रित जीवन प्रणाली कह लीजिए इसे। न समाज सुधारक बनने की चाह थी, न राजनीतिज्ञ बनने की और न धर्म गुरु बनने की। इन चीज़ों का अपना ही आकर्षण होता है लोगों में, पर कुछ परहेज़ सा था इन चीज़ों से। प्रत्येक साधारण व्यक्ति की तरह था मैं भी था हिंदू धर्म के प्रति उदासीन (अर्थात त्यागी - हिंदू धर्म के प्रति अपने दायित्व का त्याग करने वाला!) एवं धन के विषय में स्वार्थी (अर्थात भोगी - अपने परिवार की आवश्यकताओं के इर्द-गिर्द सोच रखने वाला!) यह था प्रभाव हमारी अति आधुनिक शिक्षा पद्धति का। आप कहेंगे मुझसे, तुमने तो अपना जीवन सँवार लिया, अब हमसे कहते हो कि दूसरा रास्ता अपनाओ? क्यों न हम भी चलें उसी राह पर, जिस पर तुम चले थे, अब हम जिएँ जो ज़िंदगी तुम जिए हो, फिर सोचेंगे। हाँ, आपको यह कहने का अधिकार बनता है, पर इसके उत्तर

में मैं यही कह सकता हूँ - मैंने जो भूल किए हैं उन्हें तो अब सुधार नहीं सकता क्योंकि समय चक्र को मैं पीछे मोड़ नहीं सकता, पर हाँ, आपको अवगत अवश्य करा सकता हूँ, आगे आपकी इच्छा, आप सुनें या अनसुना कर दें! मैं धर्मनिरपेक्ष यों था कि मुझे प्रत्येक धर्म से प्रेम था क्योंकि मैंने अन्य धर्मों को अपने धर्म की दृष्टि से देखा था। मुझे याद है, १९८५ जब मैं यूएई का दौरा कर रहा था, शाम हो चली थी, और हम शारज़ाह से गुज़र रहे थे कि मेरे पाकिस्तानी ड्राइवर मलिक ने कहा नमाज़ का वक्त होने वाला है, क्या हम थोड़ी देर के लिए रुक सकते हैं, यहीं आगे एक मस्जिद है। मैंने उससे यही नहीं कहा कि, बेशक, बल्कि मैंने भी सर पर रुमाल रखा, मस्जिद में गया, और इबादत की। संभवतः १९८४ की बात होगी, तन्ज़ानिया के पुरखों वाले ओमानी हमूद हमदून मुहम्मद के किसी संबंधी की मृत्यु पर मैं न केवल उनके साथ मस्जिद में गया बल्कि उसके बाद एक बहुत बड़े थाल में उसके घर वालों एवं मित्रों के साथ बैठ कर एक ही थाल में खाना खाया। संभवतः १९७८ की बात है, बंबई के एक कैथोलिक गिरजाघर में मैंने उनके साथ 'मास' में हिस्सा लिया और १९९६ में टोरॉन्टो (कैनेडा) के एक प्रोटेस्टेंट गिरजाघर में 'सर्मन' सुना। १९७८ में यहूदियों के 'सिनागॉग' में गया और १९७४-७५ में पारसियों के 'अग्यारी' में। किसी धर्म से मुझे कोई परहेज़ न था और एक मूर्ख की भाँति सब धर्मों को समान समझता क्योंकि उन धर्मों के बारे में मुझे उतनी ही जानकारी थी जितनी हमें दी गई थी हमारी इस झूठी शिक्षा पद्धति के द्वारा। वास्तविकता को तो मैंने तब जाना जब उनके धर्मग्रंथों एवं उनके इतिहास में मैं स्वयं डूबा। वह तब हुआ जब मैंने इटली में जाकर ईसाईयत का घिनौना रूप देखा और तब मैंने आरंभ किया अतीत के गड़े मुर्दों को उखाड़ना! पढ़ें मेरी अन्य पुस्तक *क्ण्द्धत्म्ञ्द्यत्त्ुदत्द्यन्र त्द ठ्ठ ड्डत्ढढड्ढद्धड्ढदद्य ख्ट्ढ़ण्द्य* अथवा उसके हिंदी अनुवाद की प्रतीक्षा करें।

जीवन का दूसरा अध्याय! पहले अध्याय से तीसरे अध्याय तक का सफ़र, या कहिए पहले पड़ाव से तीसरे पड़ाव तक की यात्रा। भेंट महाकाल से, जहाँ पहुँच कर सब कुछ शून्य हो जाता है। इसकी कहानी फिर किसी दिन उचित समय आने पर! वहाँ से वापसी एक झंझावात के बीच से गुज़र कर। एक जीवन समाप्त, उसी शरीर में दूसरा जीवन आरम्भ! जीवन का तीसरा अध्याय! श्रीमद्भगवद्गीता पर भाष्य लिखते हुए एक प्रश्न जो मेरे मन में उठा, वह यह था - भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में ही

क्यों दिया? यदि भगवान चाहते कि आने वाले युगों में लोग गीता को मोक्ष एवं त्याग की दृष्टि से देखें तो वह अर्जुन को वन के किसी कुटिया में ले जाते। पर उन्होनें ऐसा नहीं किया? उन्होनें युद्धभूमि ही चुना। क्यों? क्योंकि वह जानते थे कि आने वाले युगों में अधर्म इतना बढ़ेगा कि तब संसार एक युद्धभूमि बन कर रह जाएगा। उस दिन के लिए उन्होनें गीता का संदेश दिया था। वह दिन आज आ गया है। पर यह बात आसानी से आपके हृदय में घर नहीं करेगी। यह एक पुस्तक आप को उस जटिल सत्य की प्रतीति तो करा सकती है पर उसका पूर्ण अनुभव नहीं। उसके लिए आवश्यकता है आज इस श्रृंखला की जो आपको उस जटिल सत्य के अनेक पहलुओं से पहचान कराएगी। उस श्रृंखला की पहली कड़ी को जो मैं आपके सामने इस एक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ - इसे पहले आप पढ़ें। उसके पश्चात यदि आपको मेरे कथन में कुछ सत्य दृष्टिगोचर हो, तभी आप इस श्रृंखला की अगली कड़ियों (आगामी पुस्तकों) पर नज़र डालें, अन्यथा मुझे भूल जाएँ। धर्म की व्याख्या करने के पश्चात जब मैं अधर्म पर टीका करने लगा तो मुझे इस बात की अनुभूति हुई कि अधर्म को हमारे जीवन से संबंधित उदाहरणों के द्वारा ही स्पष्ट करना उचित होगा, ताकि लोग अधर्म को केवल जानें ही नहीं, बल्कि अच्छी तरह पहचानें भी। यह आवश्यक प्रतीत हुआ क्योंकि आज अधर्म, धर्म की नक़ाब पहने होता है। धर्म का मुखौटा पहने आज अधर्म अपने पर फैलाता जा रहा है। धर्म और अधर्म में भेद करना साधारण मनुष्य के लिए कठिन हो गया है। ऐसी परिस्थिति में यदि हम उदाहरण, अपने चारों तरफ़ के वातावरण से चुनें, तो संभवतः साधारण जन समुदाय के लिए उसे पहचानना सहज हो जाए। अब जब उदाहरण चुनने की बात आई तो मुझे इतिहास की ओर रुख करना पड़ा। और जैसे-जैसे मैं डुबकी लगाता गया वैसे-वैसे ऐसे सब तथ्य सामने आते गए कि हैरान रह जाएँ। धन और मीडिया (समाचार पत्र, टीवी, इंटरनेट, इत्यादि) के द्वारा सत्य को असत्य का रूप एवं असत्य को सत्य का रूप देना आज कितना व्यापक हो गया है, इसका अनुभव आप को मेरे शोधों से होता रहेगा। धीरे-धीरे अधर्म के उदाहरण इतने अधिक जमा हो गए और उनका अंदरूनी चेहरा कुछ ऐसा दिखने लगा कि उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता पर टीकाओं का हिस्सा बना कर रखना मुश्किल हो गया। तब शुरू हुई एक श्रृंखला जिसे नाम दिया, ज्ञान आपकी शक्ति, अज्ञान बना अभिशाप!

हिंदू स्वभाव से शांतिप्रिय है। यह शांति तभी तक बनी रह सकती है जब तक वह शक्तिशाली हो। वह तभी शक्तिशाली हो सकता है, जब वह एक जुट हो पाँडवों की तरह!

धर्म हमारा पिता है, जो हमें हमारी सोच देता है, हमारा विवेक देता है, हमे सही पथ पर चलने की सीख देता है। जब पिता जर्जर हो जाता है, तो जवान संतानों का क्या कर्तव्य बनता है? यह प्रश्न मैं छोड़ता हूँ आपके लिए!

लेखक की पुस्तकें

Arise Arjun

राम मंदिर तुम्हें पुकारता

Ayodhya Shri Raam Mandir

Christianity in a different Light

Tell [Them] what our Gods mean

BhagavadGita in Today[s Context

संदर्भ

(जिनका उद्धरण हमने इस पुस्तक में दिया है)

फ़ ऑक्सफ़ोर्ड डिक्श्नरी ऑफ़ इंग्लिश, द निउ, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, इंडियन एडिशन, नई दिल्ली, १९९८, २००१

फ़ एल्स्ट, डॉ कोएनराड, अयोध्या - द केस अगेंस्ट द टेम्प्ल, वॉएस ऑफ़ इंडिया, नयी दिल्ली, २००२

फ़ काट्ज़ू, प्रॉफ़ेसर मंजरी, विश्व हिंदू परिषद ऐंड इंडियन पॉलिटिक्स, ओरियेंट लॉन्गमैन, पुस्तक समीक्षा, द फ़्री प्रेस जरनल, मुम्बई संस्करण में प्रकाशित, ३० मार्च २००३, स्पेक्ट्रम पृष्ठ ६

फ़ कामथ, एम वी, अयोध्या - ऐन अनहैप्पी रिफ़्यूज़ल बाई द मुस्लिम्स, द फ़्री प्रेस जरनल, मुम्बई संस्करण, १७ जुलाई २००३, एडिटोरियल पृष्ठ ४

फ़ गुप्ता, डॉ एस पी, इफ़ ओनली द कोर्ट हैड एग्ज़ैमिन्ड द एविडेन्स, द अयोध्या रेफ़रेन्स - सुप्रीम कोर्ट जजमेंट ऐंड कॉमेंटरीज़, वॉयस ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, १९९५

फ़ गोयल, श्री सीता राम, हिंदू टेम्प्ल्स - व्हॉट हैप्न्ड टू देम - वॉल्यूम टू - द इस्लामिक एविडेन्स, वॉयस ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, १९९१, २०००

फ़ जॉयस, मुख्य न्यायाधीश एम रामा, ऑन द डिसीज़न नॉट टू डिसाइड, द अयोध्या रेफ़रेन्स - सुप्रीम कोर्ट जजमेंट ऐंड कॉमेंटरीज़, वॉयस ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, १९९५

फ़ द सुप्रीम कोर्ट जजमेंट, द अयोध्या रेफ़रेन्स - सुप्रीम कोर्ट जजमेंट ऐंड कॉमेंटरीज़, वॉयस ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, १९९५

फ़ नंद कुमार, डॉ, भारतीय विद्या भवन, लंदन, इंग्लैंड, संस्कृत साहित्य, उद्धरण, अर्थ इत्यादि, पंडित रवि शंकर की चैंट्स ऑफ़ इंडिया, जॉर्ज हैरिसन एवं ऐंजेल रेकॉर्डस, यूएसए, १९९७, भारतवर्ष २०००

फ़ पाठक, प्रॉफ़ेसर आर सी, भार्गव स्टैंडर्ड इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी हिंदी इंलिश, श्री गंगा पुस्तकालय, वाराणसी, १९४६, १९९८

फ़ बाहरी, डॉ हरदेव, राजपाल हिंदी शब्दकोश, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, २००२

फ़ बेवेरिज, मिसेस ए एस, बाबरनामा का अनुवाद, दिल्ली, १९२६, १९७०

फ़ राजाराम, डॉ एन एस, ए हिंदू विउ ऑफ़ द वर्ल्ड - एस्सेज़ इन द इन्टेलेक्चुल क्षत्रिय ट्रडिशन, वॉयस ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, १९९८

फ़ शर्मा, विशाल, बाबर्स ऐबेरेशन हॉन्ट्स ए मिल्लेनियम, द फ़्री प्रेस जर्नल, मुंबई संस्करण, १७ जुलाई २००३, ओप-एड पृष्ठ ५

फ़ शोउरी, डॉ अरुण, भूमिका, द अयोध्या रेफ़रेन्स - सुप्रीम कोर्ट जजमेंट ऐंड कॉमेंटरीज़, वॉयस ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली, १९९५